

हिन्दी की लम्बी कविताओं का प्रथम दस्तावेज

कहीं भी खत्म कविता नहीं होती

संपादक डॉ० नरेन्द्र मोहन



संभावना प्रकाशन, हापुड

वही भी खत्म कविता नहीं होनी (कविता) / प्रथम संस्करण 1978/आवरण
सतोष जडिया/प्रकाशक सभावना प्रकाशन, हापुड 245101/मुद्रक प्रगति
प्रिन्स नवीन शाहूरा दिल्ली 32 मूल्य पतीस रुपये

KAHIN BHI KHATM KAVITA NAHIN HOTI (Poetry) Edited
by Dr Narendra Mohan, First Edition 1978 Rs 35 00

उन सभी कवियों को जिन्होंने
लम्बी कविता को
सभव बनाया

कही भी खत्म कविता नहीं होती

नरेन्द्र मोहन कही भी उत्तम कविता नहीं होती/11



अज्ञेय असाध्य वीणा/31

मुक्तिबोध अंधेरे में/45

धमवीर भारती प्रमथ्यु गाथा/89

रघुवीर सहाय आत्महत्या के विरुद्ध/99

राजबमल चौधरी मुक्ति प्रसंग/107

धूमिल पटकथा/131

अमृता भारती आज या कल या सौ बरस बाद/161

वल्लदेव वशी उपनगर में वापसी/181

मणि मधुकर घास का घराना/203

लीलाधर जगूडी बलदेव खटिब/225

कही भी खत्म कविता नहीं होती

मुक्तिग्रह की लम्बी कविता 'चक्रवर्त की चिंगारियाँ' के अंतिम भाग की दो पक्तियाँ हैं

नहीं होती कही भी खत्म कविता नहीं होती
कि वह आवेग त्वरित काल यात्री है

कविता की समापन रुद्धि से मुक्त होने का यह वक्तव्य कोरा शाब्दिक प्रस्ताव नहीं है, यह वक्तव्य मुक्तिग्रह की कविता दृष्टि में से छनकर आया है। कविता को 'आवेग त्वरित काल यात्री' मानने वाला कवि कविता का वाक्यांश समाप्त करने की रस्म निभा ही नहीं सकता, चास तौर से तब तो विलुप्त ही नहीं जब एसा करने के साथ कलावादी और विम्ववादी आशय छिपे हुए हो। मुक्तिबोध जानते थे कि कलात्मक अविधि की दृष्टि दूर या विव का प्रतिमान मानकर कविता में से उभर रही भाव या विचार चेतना को अवर्द्ध करने के प्रयत्न किये जाते रहते हैं। अविधि स्वधी एने तवाजा और प्रतिमान का मुक्तिबाध अपनी कविता के लिए, खाम तौर से, लम्बी कविताओं के रचना विधान के लिए एक गर जरूरी और अनुचित हस्तक्षेप मानते थे क्योंकि उठ लगता था कि इस तरह की धारणाएँ यथाय की सीमित करती हैं और इसके विविध रूपों और गतिशील तत्वों की पहचान में बाधक बनती हैं। यथाय के विविध और गतिशील रूपा, तत्वों द्वारा परिष्कृत होने वाले और लम्बी कविता का एक अनिवाय काय माध्यम के रूप में अपनाने वाले मुक्तिबाध जस कवि से कलावादी, विववादी आशयों की पूर्ति के निमित्त कविता को परपरित अथ में समाप्त करने की धारणा के विरुद्ध वक्तव्य देना स्वाभाविक ही था। यह वक्तव्य, इसीलिए, मुक्तिबोध द्वारा केवल अपनी कविताओं के पक्ष में दिया गया सजल तर्क भर नहीं है, हिन्दी की लम्बी कविताओं के सदभ में

12 वही भी खत्म कविता रही होती

भी इस वक्तव्य की अहमियत है। इमम यथाय को पकड़ने और अभिव्यक्त करे की तथा एक नय रूप विधान में कविता रचने की छटपटाहट की ओर स्पष्ट गन्तव्य है। इसमें कविता के प्रति उनकी वह रचना-दृष्टि भी सामन्य जा गयी है जो उनकी रचनाधर्मिता और मूल्यांकन पद्धति का आधार है। ध्यान देने की बात है कि वे भावुक कवियों की तरह कविता को केवल 'आवेग त्वरित' बहुर छुटकारा नहीं पा लेते। वे उसे 'आवेग त्वरित काल' यात्री कहते हैं और उसे काल के आयाम में, ऐतिहासिक परिस्थिति के सदर्भ में ग्रहण करने और फलाने पर बल देते हैं।

इस वक्तव्य का महत्व इस दृष्टि से भी है कि इसके माध्यम से लम्बी कविता के कुछ खास पहलू उजागर हो सके हैं, यद्यपि सभी प्रकार की लम्बी कविताओं में इन्हें खाजना भ्रामक और अनुचित ही होगा। लम्बी कविताएँ रचित हुए मुक्तिबोध को एक भिन्न किस्म का अनुभव हुआ था—छोटी कविता, प्रगीत और प्रबन्धात्मक विधान में काव्य रचना करने से निष्पन्न अनुभव से अलग और विशिष्ट—जिस पर न छोटी कविता और प्रगीत के नियम लागू हो सकते थे, न प्रबन्धात्मक विधान के। शुरू शुरू में इससे मुक्तिबोध को परेशानी और दुविधा जम्बर हुई¹ और उन्हें उपेक्षा भी सहनी पड़ी क्योंकि उनकी कविताएँ प्रचलित मायताओं और प्रतिमानों के अनुकूल नहीं थीं। पर चूँकि लम्बी कविता का विधान उनकी रचनाधर्मिता और यथाय बाध के दबावों में से सहज रूप से फूटा था, इसलिए बावजूद कठिनाइयों और परेशानियों के वे उसे गंभीर सजनात्मक निष्ठा के रूप में अपनाएँ रहे और कविता और जालोचना की बनी बनाई सरणियों और परिपाटियों को चुनौती देते रहे। इसी सिलसिले में उन्होंने अपनी लम्बी कविताओं द्वारा कविता की समापन रूढ़ि में मुक्त होने का प्रमाण दिया तथा अन्तिम सबंधी घिसी पिटी प्रगीताश्रित मायताओं को अमाय ठहराया।

हमारे यहाँ कविता की आलाचना के प्रतिमान मुख्य रूप से छोटी कविताओं, प्रगीतों या प्रबन्धात्मक काव्यों के आधार पर ग्रहण किए जाते रहे हैं। ये प्रतिमान लम्बी कविताओं या लम्बे जाकार में फली हुई रचनाओं के विश्लेषण मूल्यांकन करने में सहायक सिद्ध होने के बजाय, अधिकतर बाधक ही बने हैं। लम्बी कविताओं में सबदनात्मक तथा चेतनागत तनावों को व्योरो की सहायता में जिस रूप में सतुलित किया जाता है, उसकी कल्पना भी छोटी कविताओं या प्रगीतों के रचना

1. बल ही मैंने एक लम्बी कविता खत्म की। उस का अन्त मज शिथिल सा जान पड़ा। उस के अन्त पर जितना अधिक साधना गया मने लगा कि उस कविता को और बढ़ाना होगा कि वह अपने आप बंध जायगी। मझे उसकी समाप्ति नम्बाई चौड़ाई देव भय सा जान पड़ा भय इसलिए कि इतनी प्रदीप्तता हमारे यहाँ अच्छी नहीं समझी जाती। मुक्तिबोध एक साहित्यिक को डायरी १०२६

विधान म नहीं की जा सकती । यथाथ की गतिशील और गुफित प्रवृत्ति का लम्बी कविताआ म ही अभिव्यक्त किया जा सकता है छोटी कविताआ म नहीं । लम्बी कविताओ को, इसीलिए, छोटी कविताआ के प्रतिमान के आधार पर अथवा प्रगीतात्मक या प्रबन्धात्मक अभिव्यक्ति से निर्मित आलोचना पद्धति द्वारा परखा नहीं जा सकता । छोटी कविताआ, प्रगीता और प्रबन्धात्मक विधाना पर निर्भर और उनसे बनी आलोचनात्मक आदता द्वारा लम्बी कविताआ को समझा म हमेशा कठिनाई रहेगी ।

किसी साहित्यिक रचना के रूप विधान के बनने टूटने और अप्रासंगिक हो जाने का जैसे एक इतिहास है उसी तरह साहित्य के क्षेत्र म किसी नय रूप विधान के उदय, प्रारंभ और चरम बिन्दु तक पहुँचने का, उसका उभर कर सामने आने का भी एक इतिहास है । इसे नजरअन्दाज करने से किसी भी समय के साहित्य को या उसके रचना विधान को समझा नहीं जा सकता । रूप विधान में परिवर्तन की जड़ उस समय के समाज म या युग विशेष में विद्यमान रहती हैं । इस सदर्भ म ही कवियों द्वारा, समय-समय पर, अभिव्यक्ति के संकट की महसूस किया जाता रहा है । हम यह ध्यान म रखना चाहिए कि इतिहास के किस बिन्दु पर कौन सा रूप-विधान कवियों द्वारा अशत या पूणत अस्वीकृत कर दिया गया ? यह भी संभव है कि किसी युग विशेष म दा से अधिक रूप विधान समान रूप से कविया तथा पाठका द्वारा ग्रहण किये जाते रहे हा या कविया द्वारा एक की अपेक्षा दूसरे को तरजीह दिए जाने की प्रवृत्ति रही हो । कई बार एक ही समय के साहित्य म अनेक रूप विधानों की सह-स्थिति भी दिखती है । नयी परिस्थितिया म कवि का सृजनात्मक बोध नय नय रूपाकारा को ग्रहण करने के प्रति आकर्षित होता है पर परम्परागत रूपाकारा की अभिव्यक्ति क्षमता म विश्वास और उनमें लिपन की अभ्यागी मनोवृत्ति उस पर अकुण भी लगाये रखती है । छायावादी युग की हिन्दी कविता म नय रूप विधान के प्रति आकर्षण तथा पुराने रूप विधान द्वारा पैदा हुए प्रतिवर्तों का एक साथ देखा जा सकता है । छायावाद युग म प्रबन्धात्मक विधान का चरम निदर्शन 'प्रसाद' की कामायनी' (1936) म जर्जर मिला पर इसी युग म सुमित्रानन्दन पत्त की 'परिवर्तन (1923), जयशंकर प्रसाद की 'प्रलय की छाया' (1937) और सुयवांत निपाठी 'निराला' की 'राम की शक्ति पूजा' (1937) जसी लम्बी कविताएँ भी लिखी गयीं जिनसे कविता का प्रबन्धात्मक और प्रगीतात्मक ढाँचा बुरी तरह हिल गया । लम्बी कविताआ का यह प्रारंभिक दौर प्रबन्धात्मक और प्रगीतात्मक ढाँचे की जकड़वादी से मुक्त होने का पहला कायात्मक अभियाँ था । यह अभिमान आगे चलकर वास्तविक सामाजिक स्थितियों को जैसे-जैसे आत्मसात करता गया, इसका रूप निखरता गया और प्रबन्धात्मक विधान अप्रासंगिक बनता गया ।

यह एक तथ्य है कि आधुनिक जीवन की जटिल वास्तविकता ने परंपरागत कलात्मक वाक्यरचना की उपयोगिता और माधुर्यता के सामने प्रश्न चिह्न लगाया है। यथा यथा अभिव्यक्ति में सहायता यान के बजाय बाधा ही बने हैं और इनके रूढ़ साक्षात् जुड़ी हुई अभिव्यक्ति के कारण आधुनिक अनुभव ही अभिव्यक्ति अवरूढ़ हुई या कम अभिव्यक्ति हुई है। रोड़े अभिव्यक्ति प्रकार जय इग तरह के वाक्यानुभव का अपन साक्षात् म अपनी शर्तों पर जबड़ में तो उसकी रचनात्मक उपयोगिता सदृशस्पष्ट हा जाती है। प्रगत्यात्मक रूप विघात के साथ यही हुआ है। इनके रचनात्मक दृष्टि से अनुपयोगी और अप्रासंगिक हा जान का एक पास कारण यह रहा है कि यह वाक्य रूप एक रूढ़ पद्धति के अनुरूप प्रतिक्रियाएँ जगता रहा जिससे आधुनिक अनुभव और वास्तविकता तथा उससे निष्पन्न चेतना के साथ इसका विशय तालमेल न बठ सका। आधुनिक जीवन की उल्टी हुई परिस्थितियाँ और जटिल संवेदनाओं के सदभ म परंपरागत वाक्य माध्यम अपयोज्य सिद्ध हुआ। उस पुराने रूप विधान में अभिव्यक्ति करना संभव न रहा। यह एक दिलचस्प उदाहरण है कि वास्तविकता के अनुरूप जपन साक्षात् म रद्दीबदल न कर सजन के कारण तथा अपन रूपात्मक कलेवर में घनी हो जाने से रोई वाक्य रूप के अपनी प्रासंगिकता छोकर बाय हा जाता है। अभिव्यक्ति की इस समस्या से जूझने के दौरान ही एस वाक्य माध्यम की तलाश शुरू हुई जिसमें नए जीवन विधान की संगति हा और जो परंपरागत रूप विधान की रूढ़ियाँ स मुक्त भी हो, जिसमें नए सत्य के साक्षात्कार की क्षमता हा और जो आधुनिक परिस्थिति और संवेदना द्वारा पुष्ट और प्रमाणित भी हा। इस तलाश के सिलसिले में ही लन्डी कविता का नाटकीय विधान उभर कर सामने आया। कवि कर्म की गई धारणा के परिणामस्वरूप तथा परिस्थिति और कवि मन के एक साथ क्रियात्मक हो उठन और क्रिया प्रतिक्रिया में नियोजित हा जाने से लन्डी कविता के रूपात्मक आवेपण तथा रचनात्मक प्रतिक्रिया में मदद मिली। आधुनिक स्थितियों को देखते हुए लन्डी कविता इस अर्थ में एक कायगत अनिवायता सिद्ध हुई।

लन्डी कविता की रचना प्रक्रिया का एक विघातक अंतर्वर्ती पहलू सजनात्मक तनाव है। सजनात्मक तनाव की प्राथमिक स्फूर्ति या उसका मात्र एक क्षण लन्डी कविता नहीं लिखवा सकता, भन्ने ही उससे एक सुन्दर विम्ब या एक अच्छी छोटी कविता की सृष्टि हा जाए। लन्डी कविता की रचना तभी संभव है जब सजनात्मक तनाव दीर्घकालिक हो तथा विरतृत फनक पर अपनी क्रियात्मकता सिद्ध कर रहा हो। पर एडगर ऐलन पो को लगता है कि लन्डी कविता में इसे साध पाना संभव नहीं है। य वह मानते हैं कि लन्डी कविता महज एक विरोधाभास है क्योंकि तनाव की जिस मात्रा से कोई रचना कविता के योग्य प्रतीती है उस तनाव

को किसी बड़े आरार म या लम्बे रचना विधान मे बराबर जनाए रचना संभव नहीं है।¹ यहा पो छोटी कविता या प्रगीत के तनाव सबधी प्रतिमान को लम्बी कविताओ के विधान पर लाद रहे हैं। तनाव सबधी जो धारणा पो के मन म है वह प्रगीत या छोटी कविताओ पर आधत है। पो जिस तनाव की बात कहत हैं वह एक मनाशातर सीमित रह जाने वाला तनाव है। विभिन्न मनोशाओ का बोध जगान वाते तनाव की प्रकृति छोटी कविता की तनाव सबधी धारणा मे भिन्न होगी ही। पो की इस धारणा का कि कोई भी लम्बी रचना सदैव समान रूप से तनाव की तीव्रता को वायम नहीं रख सकती, वा खडन टी० एस० इलियट ने अपन एक निबन्ध मे यह कहकर किया है कि लम्बी कविता म तनाव और विश्रांति की प्रिया मूवमट आफ टेंसन एण्ड रिलाक्सेशन रहती है। मैंने अयत्र इस सबध म लिखा भी है कि लम्बी कविता के सरचनात्मक विनासत्रम म एक तनावपूर्ण अश या परिच्छेद के बाद निहायत सीधा सादा, सपाट, गद्यात्मक अश या परिच्छेद भी रह सकता है जो पूर्ववर्ती तनाव दशा के परिप्रेक्ष्य मे या समग्र कविता के सदम म सायब हो।² लम्बी कविता म इस तरह के सरचनात्मक सतुलन को साधना और वायम रखना जरूरी है। इलियट ने 'द वाइडेट पासिविल वरीएणज आफ इटेंसिटी'³ की ओर सकत करके लम्बी कविता मे उपस्थित तनाव के विविध रूपा और स्तरो के सजनात्मक उपयोग की ओर ध्यान आकषट किया है। सजनात्मक तनाव के इन विविध रूपा और स्तरो को वास्तविक स्थितिया के सदभ म रखना और उनके दबाव को झेलना लम्बी कविता की रचना प्रक्रिया की अनिवाय शत है।

सजनात्मक तनाव की बनावट और प्रकृति को समझना भी बहुत जरूरी है। इस तनाव के पीछे भावना है या विचार अनुभव है या वित्र या अनुभव और विचार की सश्लिष्ट प्रवृत्ति, यह जानना जरूरी है। केवल भाव स्फून तनाव कविता को लम्बाई मे फैला जरूर सकता है, उसे लम्बी कविता नहीं बना सकता। हा

1 आई होल्ड देट ए साग पोयम डब नाट एग्जस्ट। आई मन्टेन देट नि करेड, 'ए साग पोयम' दब सिम्पली ए पबट कटराडिक्शन इन टमज देट डिप्री आफ एक्साइटेमट विच बड इनटाइ टल ए पोयम टु बी सा काल एण आन इन नाट बी सेसटेंड यू आउट ए कम्पाजिशन आफ एनी प्रट लेंथ'।

फिलिप वान डारिन (स०) की पोर्टेबल पो, (दी वार्डिंग प्रेस 194९) पृ० 568

2 टी० एस० इलियट 'परोज एण्ड वरा वेपबक सख्या 22 (अप्रल 1921) पृ० 525-526

3 नरेट्र मोहन लम्बी कविताओ का रचना विधान पृ० 7

4 टी० एस० इलियट 'ट्रिटिसाइज नि क्लिटिक एंड अन्तर एस्मेज (फरूर ए, 1965) पृ० 34

भावावेश अगर किसी बात को लेकर हो, वह बात किसी दूसरी बात से जुड़ी हो दूसरी बात किसी तीसरी बात से, तो लम्बी कविता में उसकी सायकता हो सकती है।¹ इसके लिए अनुभव और विचार का व्यात्मक विधान जरूरी है। कविता में अनुभव और विचार के विशिष्ट समीकरण को साध कर ही भावुकतापूर्ण और अनुभववादी धारणाओं से मुक्ति पाई जा सकती है। इस ओर विद्यानिबाम मिश्र ने भी सकेत किया है 'बुद्ध के सामने दूसरी ही लाचारी है, वह है सधन भावुकता से बचने के लिए जो एक निमग्न प्रौढिक प्रयत्न हो, उसके लिए बुद्ध अतिरिक्त स्पष्टीकरण, बातों को कहने के लिए कई प्रकार की भंगिमाएँ, बातों को एक दूसरी बात से काट कर पुनः तीसरी बात से काट कर धीरे धीरे उत्कृष्ट शिखर रचने का संकल्प, यह सारी चीजें जरूरी हो जाती हैं'² यह निमग्न प्रौढिक प्रयत्न लंबी कविता की बर्चस्व बनावट की जोर सकेत है जहाँ बातों को एक दूसरी बात में काट कर, पुनः तीसरी बात से काट कर धीरे धीरे उत्कृष्ट शिखर रचने का संकल्प रहता है। इससे लम्बी कविता आटो राइटिंग नहीं रह जाती। इसमें न आत्म का लोप होता है, न बहुतर सदमों का। इसमें दोनों का नियोजन टकरावपूर्ण रहता है। इस टकराव और इससे उत्पन्न तनाव की अभिव्यक्ति के लिए वैचारिक संवेदना या मुक्तिबोध के शब्दों में 'आनात्मक संवेदना' ही एक मात्र उपाय है। इसे ही मैं अनुभव और विचार का संयुक्त रचना विधान कहना चाहूँगा। लंबी कविता के लिए यही सर्वाधिक उपयुक्त रचना विधान हो सकता है।

अनुभव और/या विचार के लगातार दबाव से या किसी विधायक विषय या रूपक की लगातार केंद्रीय स्थिति से ही सजनात्मक तनाव निष्पन्न होता है। इसके बिना लंबी कविता की (लंबी कविता की संरचना भले कितनी ही अराजक क्यों न बना दी जाए) कल्पना नहीं की जा सकती। सजनात्मक दृष्टि से लंबी कविता के विधायक विषय या रूपक और इसके संरचनात्मक वैविध्य विस्तराव और खुलेपन में विरोध नहीं है। इसी बिंदु पर विषय और विवरण और विचार कवि के अभिप्राय को गहराते हैं। इसे प्रतिभाशाली कवि ही साथ पाते हैं। इसे न साध पाने के कारण फ्रेन की लंबी कविता 'द विज असफल रह गई और इसे साध लेने की वजह से विलियम कार्लोस विलियम्स की लंबी कविता पेटरसन एक महत्वपूर्ण लंबी कविता बन गई।

लंबी कविताओं की रचना प्रक्रिया का प्रश्न, अतएव इनकी अचिंतित के स्वरूप से भी जुड़ा हुआ है। लंबी कविता ऊपर में विश्रुत खल और अराजक लग सकती है पर भीतर से संगठित हो सकती है। लंबी कविता में यह अचिंतित सीधी और

1 त्रेडिगे एक साहित्यिक का डायरी मुक्तिबोध प 26

2 कल्पना (अप्रैल 1974) पृ० 54

ताकिक नही हाती । अनेक प्रसगो, कथात्मक अशा और सदभों-सवेता का असबद्ध सा दिखन वाला वणन चित्रण इसम रह सकता है, पर इस असबद्धता मे ही सबद्धता और अविचि के जातरिब, सजनात्मक सूत्र विद्यमान रह सकते है । यह अनुमान किया जा सकता है कि लगी कविता का गठन जहा विवात्मक हो वहा आवयविक और अवहित दिखे और जहा वित्र सके द्रण पर आग्रह न होकर सदभों और प्रसगा की सनिधि और टकराव पर बन दिया गया हो वहा अविचि शिथिल और खडित दिखे । लगी कविताओ म अविचि के ये दोनो ही प्रकार— विवात्मक और वैचारिक मिलते है । पहल प्रकार की अविचि म सभी विवरण, सदभ और प्रसग कद्रीय त्रिव द्वारा सतुलित रहते ह तो दूसरे प्रकार की अविचि मे किही विचार-मूजो से जुटे विवा का अनवरत क्रम । इलियट त्रिवात्मक विधान और सपाटबयानी को, सयुक्त रूप से, अपनी लगी कविताआ म महत्व देते प्रतीत होते है तो एजरा पाउड सदभों के विपर्यास को विवात्मक क्रम मे बाधने का प्रयत्न करते है, उनकी पिखरी हुई सत्ताजा को विवा के माध्यम स अभिव्यक्त करते है । गठन के ये दाना प्रकार एक साथ भी किसी लगी कविता म रह सकत हैं— एक दूसरे से टकराते हुए, एक दूसरे को पुष्ट और समद्ध करते हुए । एक आख्यान और त्रिव से शुरू करके विचार की दिशा म बढ़ सकता है, दूसरा विचार से शुरू करके त्रिव विधान की ओर । यह प्रक्रिया विव से विव की ओर या विचार से विचार की भी हो सकती है । वसे त्रिव और विचार का तनाव लगी कविता की सरचना का मूल आधार है । तब यह बात विशेष महत्व नही रखती कि पहले विव विचार म बदला या विचार विव मे । पाउड 'केटोज' के विधान म शुरू म लापरवाह दिखते हैं । सदभों, प्रसगो, स्थितिआ और परिस्थितिआ को पहले एक अराजक विस्तार मे उठाते है और बाद म उनम किसी विचार सूत्र की खोज म तल्लीन हो जाते हैं पर उनकी पद्धति शुरू से जत तक, कोरमकोर विवधर्मा है । इलियट शुरू से ही अपनी कविता 'वेस्टलड' म विधायक रूपक को तानते है पर वे रूपक के तनाव को कायात्मक स्थितियो पर हावी नही होने देते, विवरणा के सयोजन द्वारा वे तनाव को बीच बीच म कम या डीला करते जाते है, जिममे तनाव और स्थितिआ म एक प्रकार का सतुलन आ जाता है । इलियट की लगी कविताआ के विधान का यह एक विशेष गुण है । हिंदी की लगी कविताआ म इस सरचनात्मक विशेषता को अपेक्षाकृत अधिक ग्रहण किया गया है । या, दोना ही प्रकार की अच्छी लगी कविताओ के उदाहरण हिंदी म भी मौजूद हैं । निराला की 'राम की शक्ति पूजा' मे आम्पान के सहारे सजनात्मक तनाव को विवात्मक रूप म प्रतिफलित किया गया है जबकि मुक्तिगोध की कविता — 'अधरे म म त्रिव और विवरण पूरे काव्यात्मक विधान को सतुलित किच हुए हैं । जनेय की 'अमान्य बीणा' आख्यान से त्रिव की ओर प्रस्थान का उदाहरण है तथा राजरमल चौधरी की कविता 'मुक्ति प्रसंग'

तनाव को केंद्रीय त्रिब प्रतीक द्वारा सममित करने का उदाहरण है।

लघी कविता की अविधि को प्रगीत के सदृश म रखकर अच्छी तरह से समझा जा सकता है। प्रगीत में अविधि का जो रूप माय है वह लघी कविता के काम का नहीं। प्रगीत में आवयविक गठन का विशेष ध्यान रखा जाता है जबकि लघी कविता में स्थितियाँ और सदृशों का टकरावपूर्ण संयोजन रहने से आवयविक अविधि अनावश्यक है। प्रगीत में अविधि सीधी, सपाट सतह पर झलकती दिख जाती है—एक त्रम में, एक तक में, एक निष्कप में ढली और परिणत हुई जब कि लघी कविता अपने रचना विधान में त्रम और निष्कप का प्रायः अतिरमण कर जाती है। दूसरे प्रगीत की मरचना, मुख्यतः, भावमूलक या भावना प्रधान होती है जबकि लघी कविता की संरचना में विचार या वचनिक अनुभूति का महत्वपूर्ण योग रहता है। मुक्तिबोध की लघी कविताओं की वनावट से ही पता चल जाता है कि वे भाव द्वारा आस्फालत कविताएँ नहीं हैं। वे अनुभूति और विचार के टकरावपूर्ण विचारों के कारण अनिवायत लगी हो गई कविताएँ हैं। तीसरी बात, प्रगीत में सबेदना का स्वरूप आत्मपरक रहता है जबकि लघी कविता में यथावत् परक। आत्मपरक कथ्य प्रगीत या छोटी कविता में समा जाता है पर यथावत् की जटिल संवेदना को अभिव्यक्त करने के प्रयत्न में कविता के लघी हो जाने की संभावना रहती है। पर यह कोई अटल नियम नहीं है। डॉ० नामवरसिंह ने ऐसी कविताओं की जोर (जिनमें से मुख्य हैं श्रीकांत वर्मा की 'समाधि लेख', रघुवीर सहाय की 'आत्महत्या के विरुद्ध', राजकमल चौधरी की 'मुक्ति प्रसंग') संकेत किया है जो अपनी वाचनानुभूति में आत्मपरकता का आभास देते हुए भी वस्तुतः संरचना में अप्रगीतात्मक हैं।¹ इस तरह लघी कविता का प्रतिमान प्रगीत के प्रतिमान में भिन्न है। लघी कविता पर छोटी कविता या प्रगीत की अविधि के नियम लागू नहीं किए जा सकते। प्रगीतात्मक अविधि की अल्पस्त दृष्टि से इसका जायजा या विश्लेषण भी नहीं किया जा सकता।

लघी कविता के रचना विधान का एक महत्वपूर्ण पहलू है—नाटकीयता। इसके बिना आज के जीवन की अंतर्विरोधों भरी स्थितियाँ उजागर नहीं हो सकती। स्थिति के पीछे की स्थिति का व्यवहार, मानसिक जातिमक क्रिया कलापों का अभिप्रेत करने के लिए नाटकीय विधान लघी कविता के लिए जरूरी माना जा सकता है। कार्यों और व्यापारों को नाटकीय विधान में प्रस्तुत करके स्थितियों के अंतर्विरोधों का बोध जगाया जा सकता है। इसमें नाटकीय संवादों की योजना विशेष कारगर हो सकती है। लघी कविता की संरचना में जिस गहरे कलात्मक समय की आवश्यकता है वह भी नाटकीय विधान द्वारा प्रभावी तौर पर संपन्न

1. देखिए डॉ० नामवरसिंह की पुस्तक 'कविता के नव प्रतिमान', पृ० 152

हो सकता है।

लबी कविताआ की सरचना पर विचार करना जरूरी लगता है। इसके साथ रचना प्रक्रिया और रचना पद्धति सबधी कई प्रश्न तिरपटे हुए हैं। लबी कविताओं की रचना प्रक्रिया में से गुजरने हुए और उमकी प्रदीघता को लभित करने हुए स्वय मुक्तिरोध न यह प्रश्न उठाया है 'क्या उसको काट-छाट कर छोटा कर दिया जाए या उसने भीतर जो बातें, जो गुत्थिया, जो समस्याए प्रकट हुई हैं, उसके चित्रणान्मक विकास के लिए अवसर और अत्र प्रदान किया जाए? दूसरे शब्दों में, क्या मरी कविता के अतस्तत्त्वों को (अभिव्यक्ति के लिए) विकास का अवसर दिया जाए?'¹ इस प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वय मुक्तिबोध ने लिखा है 'मैं उसको विकास और प्रसार का अवसर देने के पक्ष में हूँ।' कान्यानुभूति में निहित और उसके वक्त को फलाने-बढाने वाली वाता, गुत्थिया और समस्याओं को, जिनकी वजह से वह कविता लबी और बडी बन रही हो, अप्रामाणिक या असबद्ध करार दकर, बाहर निकाल देना की सिफारिश करना या ऐसी प्रदीघता का काट छाटकर छोटा कर देना पुरानी काय दृष्टि का परिचय देना है और समस्या से कतराना है। लबी कविता के सरचनात्मक विधान की शक्ति इसमें है कि उमके माध्यम में गौण समझी जाने वाली बातों, समस्याओं के ब्यारों को केंद्रीय अनुभूति या विचार के सदम में तान करके सायक बनाया जा सकता है और बिना किसी बाह्य अनुशासन के रचनात्मक सतुलन अर्जित किया जा सकता है। सरचना से जुडा दूसरा प्रश्न यह है कि लबी कविताओं में कथाआ आध्याना, प्रसगा सदमों तथ्यों उद्धरणों की कमें नियोजित किया जाए? उनका रचनात्मक सतुलन और सयोजन मूल सवेदना या विचार से कैसे बढाया जाए? क्या लबी कविताओं में इनकी अलग सत्ताए काममें रह या कविता की विधायक रूपात्मक चेतना में घुल जाए या उसी को प्रतिभासित करे? लबी कविताओं में कथाआ, सदमों सवेदनों, प्रसगों और उद्धरणों के विवरण और चित्रण रह सकते हैं। पर इन तमाम प्रसगों और सदमों द्वारा एकजुट रूप में कविता के नाभिक केंद्र पर आघात पडना चाहिए, उनकी असग घलग चमक नहीं दिखनी चाहिए। अनपेक्षित बधागत विस्तार और तथ्यगत सूचिया विधायक अतर्चतना से सबद्धता के अभाव में लबी कविता के लिए घातक हो सकती हैं। इनका उपयोग और सायकता तभी है अगर इहे कविता के सवेदना वक्त और विचार वस्तु के सदम में कमकर नियोजित किया जाए। रचनागत शक्तिय या सापरवाही लबी कविता को ले डूबती है। अभिव्यक्ति का अपचय—अतिरचन और अतिरिक्त चयन इममें कोड की तरह चमकता रहता है। इसीलिए विभिन्न सरचनात्मक पहलुओं में सतुलन बनाये

1 मक्तिबोध एक साहित्यिक की शायरा पृ० 26

2 वही पृ० 26

रचना लवी कविता के लिए और भी जरूरी है।

लम्बी कविताओं के विद्याम म आनुपमिक भावनाआ, विचारा, प्रसगा और तथाको वाव्यात्मक सवन्ना और केद्रीय विचार के सदभ म रचना और तानना जरूरी है। ये सब वाव्यात्मक अतर्चतेना से सम्बद्ध हो पर तथा ता कर ही लम्बी कविता के विद्यास का समद्ध करन म सहायक बनत हैं। इसके लिए कल्प नात्मक शक्ति का जरूरत है जिसके अभाव म लम्बी कविता जमूत और आडम्बर-पूण लग सकती है।¹ कल्पना द्वारा सदभों का अन्तर्गुफा और टकराव सभव बनता है, सवेदना का स्वरूप जटिल और उसके सदभ व्यापक बनत हैं। एक पद्धति यह है कि कवि भियकीय सयोजन म फाँटेसी के विधान म प्रवत्त होता है और साथ ही रचनात्मक तनाव की स्थिति म 'अतीत प्रसगा म प्रतिगमन कर जाता है और इस प्रकार अपनी जतयाना के असम्बद्ध से दिखने वाले पडावा विवरण और विशृंखल प्रतीत होने वाली भावानुभूतियों को कायात्मक सरचना म गूथ देता है'। हिंदी की विशिष्ट लम्बी कविताना 'राम की शक्ति पूजा', 'प्रलय की छाया', 'मुक्ति प्रसग और 'जधरे म' म इस पद्धति का अच्छा प्रयोग हुआ है। दूसरी पद्धति है शब्दा के सामान्य अर्थों को उलट कर विरोधी भावो विचारो की व्यजना करना। वाट हिटमन न विरोधी भावो विचारा की ओर सकेत करने हुए अपनी एक कविता 'क्रासिग न कलिन फेरी मे लिया है 'आइ टु निटेड दि जोल्ड नॉट आफ कान्ट्रेरिनी।³ विभिन्न सदभों को भाषा द्वारा गहरा देने या शब्दो के परम्परित अर्थों का बदल देने या उलट देने मान स लम्बी कविता विशिष्ट बन सकती है जैसे रघुनीर सहाय की कविता 'आत्महत्या के विरुद्ध' या विजयदेव नारायण साही की कविता 'अलविदा'। कई बार केवल लय द्वारा इस सतुलन को साध लिया जाता है जैसे जयशंकर प्रसाद की कविता 'प्रलय की छाया म। जावतिया मे निहित विभिन्न प्रकार के अथ सवधा के तालमेन की पहचान द्वारा भी वाव्यात्मक व्यवस्था अर्जित की जा सकती है। 'जधरे म और 'जसाध्य घीणा म इसे लक्षित किया जा सकता है।

हिंदी म लवी कविता के इतिहास की शुरुआन कव से मानी जाए ? क्लासिकल

- 1 दि नागर डिस्करसिब पोयट्री सीम्ड टु भी करा ऑफन डिपवज्ड एण्ड टरमिड आपरेटिग इन्टर वाइ टु मेनी परटीकुलर टु निटल एमजड थार बाई ए रिटारिकट्ट एलाजड फारदी फॉरिष होवड निमिरोव पोयट्री एण्ड फिक्शन (स्टयस यूनिवर्सिटी प्रेस न्यू जर्सी 1963) प० 198
- 2 बाई रिगेशन अनअटेन्ड इमाशन बन वो इटिथटड इट्टु ए पान्टिक स्ट्रक्चर स्टीफन ए०ब्लक जर्नीज इन् केअंग (प्रिन्टन यूनिवर्सिटी प्रेस प्रिन्टन 1975) प० 132
- 3 एडविन फ्यूगन एयूनिवर्सिटी इन हार्नेंग (प्रिन्टन यूनिवर्सिटी प्रेस प्रिन्टन 1973) प 63 पर उदघत।

रचना विधान की जगड्बदी से मुक्त होने की छटपटाहट को कब से रेखांकित किया जाए ? क्या सुमित्रानन्दन पंत की कविता 'परिवर्तन' से (कविता-संग्रह 'पल्लव', 1923) जयशंकर 'प्रसाद' की कविता 'प्रलय की छाया' से ('कविता संग्रह लहर', 1933) अथवा सुयकान्त त्रिपाठी 'निराला' की कविता 'राम की शक्ति पूजा' से (कविता-संग्रह 'अनामिका' 1937,) से। प्रारंभ में लंबी कविताएँ महाकाव्यात्मक अथवा अथवा अथवा से संबद्ध होकर ('प्रलय की छाया', राम की शक्ति पूजा) आख्यान या इतिवस्तु का सहारा लेकर उदित हुई थीं। हाँ, 'परिवर्तन' प्रारंभिक दौर की ऐसी कविता जरूर है जो किसी आख्यान या इतिवस्तु का सहारा लिए बिना परिवर्तन सम्बंधी धारणा को आवश्यक रूप से विवक्षित रूप में अभिव्यक्त करती है। यह कविता कालक्रम की दृष्टि से ही नहीं, अपने विन्यास की दृष्टि से भी हिन्दी की पहली लंबी कविता मानी जा सकती है।

छायावाद युग की लम्बी कविताएँ—'परिवर्तन', 'प्रलय की छाया', और 'राम की शक्ति पूजा' (इन तीनों कविताओं के विस्तृत विश्लेषण के लिए देखिये मरा निबंध 'आख्यान से विन्ध्य से विचार तक की अन्तर्यामी' 'लम्बी कविताओं का रचना विधान' दि. मेकमिलन कंपनी आफ इंडिया लि०, दिल्ली, प० 9 11) उन दौर की कविताएँ हैं जो प्रबन्धात्मक रचना विधान को विशेष सम्मान प्राप्त था और उससे महत्व और प्रासंगिकता के बारे में किसी को संदेह नहीं था। ध्यान देने की बात है कि ये तीनों कविताएँ उन कविताओं द्वारा रचित हैं जो छायावादी कविता के शीघ्रकाल कवि हैं। क्या इन लंबी कविताओं की संरचना पर उनकी प्रगीतात्मक प्रतिभा और रोमैटिक संस्कारा रक्षाना का प्रमाण नहीं पटा होगा ? यह प्रश्न भी हो सकता है कि इन कविताओं ने अपनी कल्पना को प्रबन्धात्मक रूढ़ियाँ से कैसे और कितना मुक्त रखा और लंबी कविता के रूप में सिरजा ? इन कविताओं की रचना के दौरान ये कवि, निश्चय ही अपने रचनात्मक अभ्यास और रचना शील मानसिकता से जुड़े होंगे और उन्हें अपने अन्तर्गत प्रगीतात्मक रूप विधान की सीमाओं से बाहर आने या ऊपर उठने के लिए रचनात्मक तौर पर सघन होना पडा होगा। इस जुझार और सघन होने के दौरान, अपने को निमग्नता पूर्वक शोधन और शोधित करने का बावजूद यह संभव है कि उनकी लंबी कविताओं की संरचना में प्रगीतात्मक और प्रबन्धात्मक रूढ़ियाँ बनी रहीं हों। यह रुचि गत बदलाव महज रूपगत बदलाव का परिणाम नहीं है बल्कि संवेदना और विचार के बदलाव का भी सूचक है। छायावादी कवियों की रचना प्रक्रिया का यह एक विशिष्ट बिंदु है कि वे प्रगीत और / या प्रबंध जैसे रूप विधानों में काय-संजन के बावजूद, लंबी कविता के रूप तथा विन्यास की ओर आवर्धित हुए।

हिन्दी की प्रारंभिक लम्बी कविताओं में आख्यान का विशेष महत्व है। इसका कारण शायद यह है कि ये कविताएँ तब प्रबन्धात्मक ढांचे की जगड्बदी से मुक्त

होन की बोधिश मे उभरी थी, पर आग्याना के वाव्यात्मक सस्यार को और उाते लिपटे हुए सासृतिव अभिप्राया को जा उनकी सवेदनाओ के रचनात्मक, सायन प्रतिफलन म सहायक हो सवत थ, छोड पाना उनके लिए कठिन था। आख्यान को उहान पुरान वणनात्मक तरीके से नहीं वलिन प्रतिगमन (रिप्रेसन) के विधान द्वारा अपनी कविताओ म डाला है। निराला की लम्बी कविता 'राम की शक्ति पूजा' म मिथकीय सयाजन की संगति म उभर रही परम्पर गुपिन भावाभा, कल्पनाआ और विचारा को देया जा सवता है। पुरावया का राजनात्मक विधान इस कविता म सडकाय या महाकाव्य के ढाचे के रूप म न होवर, लम्बी कविता के रूप म है। भावनाओ और मनोदशाआ के सान्निध्य और टकराव से यह कविता लम्बी हो गयी है। चरित्र और परिस्थिति के घात प्रतिपात, राम के सशय और उद्विगता को उभारते है। राम की अतश्चेतना से जुडे प्रसग (सीता का स्मरण) स्थिति को गहरा देते हैं। अतीत प्रसगा मे प्रतिगमन या प्रत्यावतन आनुपगिव प्रसगो, असम्बद्ध भावनाआ और विम्व्या का दडतापूवक कविता की केंद्रीय स्थिति से जोड देते है।

छायावादी लम्बी कविनाओ के वाद नरेश मेहता की 'समय देवता' और धमवीर भारती की 'प्रमथ्यु गाथा' जैसी लम्बी कविनाए नयी कविता आंदोलन के दौरान लिखी गयी जो तार्किक और भावनात्मक परिणतिया म डली हुई हैं। इन दोना कविताआ म नयी कविता के मानवनावादी आशया की भरमार है। यहां आख्यान अपने स्थूल कथात्मक रूपा मे न हाकर या तो दटिकोणो के हिस्से बने हुए हे या विम्वो मे डले हुए है। 'समय देवता' कविता म जान धारणात्मक सतह पर व्यक्त हुआ है, "यापक जागरूकता के रूप म नहीं। जान यहां जानात्मक सवेदना या विचार म रूपांतरित होता हुआ नहीं दिखता। काव्यात्मक अभिप्राय है 'समय देवता/ऐसे समय तुम्ह मरी पथवी का परिचय प्राप्त हुआ है/जबकि युद्ध की चीलो के मूह से हडडी की गध जा रही है/युद्धा के दरों म मानव लुटा हुआ सा जाज एक मदान चाहता है/और चाहता दश देश की अपनी कटी नदियो को जोड, खेत म पानी देना। इस अभिप्राय का सपूण कविता मे विधान करने वाली दटिक का यहां जभाव है। भततना और शुभासपा के स्वरयटा अलग अलग कबित है, एक अचूरी कलात्मक विवात्मक कविता के बावजूद यह कविता अपनी प्रकृति म धारणात्मक है वचारिक नहीं। धमवीर भारती की कविता 'प्रमथ्युगाथा म (कविता सग्रह सति गीत वप, 1959) कथा मक ब्यारे बेशक नहीं हैं, पर पुरा कथा के प्रमुख पात्रो की मन स्थितिया मनोदशाओ को एक दूसरे के साथ सटा करके उनके क्रम वियास की पद्धति अपनायी गई है। यहां प्रमथ्यु छुपितर, अग्नि और गड सभी एक यातनापूण स्थिति के बारे मे अपना-अपना वक्त-य प्रस्तुत करते हैं। इन वक्त-या द्वारा पाना की धारणाआ और मनोदशाओ की जानकारी तो

मिलती ही है, पुनर्विचार को सूत्र के रूप में लेना है। स्थिति के बारे में पात्रगत दृष्टिकोणों का कथन किया गया है। य दृष्टिकोणों और पात्रों के व्याख्याएँ परस्पर विरोधी हैं। यही कारण है कि कविता में डलती हैं। काव्यार्थ आशय की पहचान कविता के अंत की इन परिस्थितियों से हो सकती है 'कोई तो ऐसा दिन होगा/जब मरे ये पीडा सिकत स्वर/उसके भावों के मूर्च्छित प्रमथु का जगाएंगे।' कुल मिलाकर यह कई कविता का मान्यतावादी आशय ही है।

प्रस्तुत मकरान्त म विगत 15 16 वर्षों में प्रकाशित जोर चर्चित दस विशिष्ट लम्बी कविताओं को लिया गया है। य कविताएँ लम्बी कविताओं के तीसरे और समकालीन दौर की कविताएँ हैं। अज्ञेय की 'जमाध्य बीणा से लेकर मणि मधु कर की घास का घराना' तक में समकालीन लम्बी कविता में उत्तरांतर उभरने वाले नये रूपों और स्तरों को पहचाना जा सकता है। इस दौर की लम्बी कविताएँ स्थिति के व्योरोक्त सीमित नहीं रही हैं बल्कि वे स्थितियों को सघन चेतना की जोर उभार कर ले जाती हैं। इनकी वनावट बौद्धिक कृतियों से अनुशासित है या वैचारिक अनुश्रियाओं से। इनमें जापान से विम्ब स विचार तक जा अत्रयाना की गयी है वह इसका सरचनात्मक विद्वानों की छासिगत को ही नहीं उभारती, ऐतिहासिक सगति जोर माधयता के विद्वानों का भी रखांकित करती है।

'अज्ञेय' की लम्बी कविता 'जमाध्य बीणा (कविता संग्रह 'आनंद का पार द्वार, 1961), मुक्तिवाध की 'अधरे म' (कविता संग्रह 'चाप का मुह टेंग है 1964) जोर रघुवीर सहाय की 'जामहत्या के विरुद्ध (कविता संग्रह 'आत्म हत्या के विरुद्ध' 1967) कविताओं का सगठन बौद्धिक हं पर इकी बौद्धिकता अलग-अलग स्थिति प्रेक्ष्य विद्वानों की मुहारे की वजह से बदल गई है। 'अज्ञेय बीणा' की बौद्धिकता तर्जित है—कथा को एक निश्चित अनुक्रम में प्रस्तुत करने वाली। कविता में से उभरने वाली, परम्पर टकराने वाली विचार पद्धति यहाँ नहीं है। यहाँ कविता में एक विचार को सिद्ध करने का प्रयास है। कविता विचारों के दबाव से नहीं, कथा के तनाव से जाग बनी है, लची हुई है। यहाँ सीधे-सादे रूप विधान में कथा का एक सीधा अनुक्रम रखा गया है। यहाँ सपाट कथन पद्धति न होकर विवर्धमिता है। छोटे छोटे बिन्दु उभरने जाते हैं जोर कविता के विराट विम्ब में लय हो जाते हैं। पर मुक्तिवाध की कविता 'अधरे म' में ऐसा नहीं है। समाहार प्रवृत्ति यहाँ नहीं है। बीजा की सभावनाएँ यहाँ छत्रम या अवकृष्ट नहीं हुई हैं बल्कि तनाव सूत्रों द्वारा बढती फँसती गयी हैं। यह कविता इतिहास को समाकलित करने वाली कविता ('पोयम इन्तर्लूडिंग हिस्ट्री) है -

तथ्यो, घटनाओं या जाकडों के रूप में नहीं, अंतरंग साक्षी परिप्रेक्ष्य, संवेदन और विचार के रूप में। यहाँ आत्मिक स्मृतियाँ ऐतिहासिक स्मृतियाँ में फल गयी हैं, गुंथ गयी हैं। इतिहास बोध की इस दृष्टि ने ही इस कविता में यथाथ की प्रकृति को जटिल और सश्लिष्ट बना दिया है। यथाथ सबधी भावनाएँ और विचार यहाँ क्रमशः खुलते गए हैं—आत्मपरक और बहत्तर सदभ अंतर रूपांतरित होन गये हैं। यह यथाथ दृष्टि शिल्प और संरचना के नए विधान में ढल कर कविता में आए विवरणों तथा, सदभों और संकेतों का जथवत्ता प्रदान करती है तथा जरा जक, असम्बद्ध दिखने वाले प्रसंगा, भावनाओं को केंद्रीय विचार से कसकर जोड़ देती है। विघरे हुए सदभों को, इतिहास सदभ में ताज दन में मुक्तिवाध को सफलता प्राप्त हुई है।

रघुवीर सहाय की कविता 'आत्महत्या के विरुद्ध एक वैचारिक लम्बी कविता है। इसके रचना विधान में भावुकता लेश मात्र भी नहीं है। 'आत्महत्या के विरुद्ध' में कवि स्थिति का निमग्न होकर जायजा लेता है और उसे पड़तालता है उससे भिड़ने के लिए अपनी शक्ति तोलता है। परिस्थिति से टकराने वाले व्यक्ति की वास्तविक स्थिति को यह कविता प्रत्यक्ष कर देने में मग्न है 'बुद्ध होगा बुद्ध होगा अगर मैं भोजूंगा/न टूटे न टूट तिलिस्म मत्ता का मेरे अंदर कायर टूटेगा टट मेरे मन टूट एक बार सही तरह/अच्छी तरह टूट मत झूठ मूठ ठूठ/मत झूठ सिर्फ टूट।' समकालीन राजनातिक, साहित्यिक, सदभों और व्यक्तिवाची राजाओं का प्रयोग इस कविता की एक अनग वानगी प्रस्तुत करता है। 'समय आ गया' की पुनरावृत्ति इस कविता के विधायक अंत साध्य को तथा बाहरी दुनिया से उसकी संगति को स्पष्ट करती की क्षमता रखती है।

समकालीन सदभ में व्यक्तित्व अनुभव को सामाजिक अनुभव की सन्निधि में रखने वाली तथा समूचे बाह्य यथाथ का गतिरिक्त स्तरों पर सजित करने वाली लम्बी कविताएँ भी लिखी गयी हैं। इम राजकमल चौधरी की 'मुक्ति प्रसंग (कविता संग्रह 'मुक्ति प्रसंग' 1966) उल्लेखनीय है। इस कविता की संरचना में व्यक्तित्व और सामाजिक स्थितियों और सदभ इस कदर अतसम्बद्ध है कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। उनकी समानांतर बुनाई विशेष कौशल से की गई है कोई शिंयायत नहीं है मुझे उसमें कोई शिंयायत नहीं है उन लोगों ने मुझे/ जो यूजप्रिंट पर लिख रहे हैं मेरे श्वास का इतिहास/अथवा मेरे शरीर का आख्यान टेम्प्रेचर चाट पर। इस कविता में स्वाभाव के बाद की भयावह स्थिति का मात्र चित्रण नहीं है उम स्थिति का भीतरी स्थिति के समानांतर रखना देखा गया है। इसी मन्त्र में कवि बाहरी स्थितियों के दमन में जख्मी हुई अपनी अंतरंग पीड़ा दायक सचाई का ध्वनन करता है क्या एक ही युद्ध मरी कमर की हड्डियों में और कभी विषतनाम में होता है। इस स्थिति का सामाजिक राज नीतिगत सदभ स्तर

कवि ने स्थितिगत विसर्गति को उघाटा है और उसे अधिक व्यापक और सघन बना दिया है। इस 'गतिहीन घतमान मे' अपन 'होने के वाचजू न हो पाने' की विडम्बना का यातनापूर्ण एहसास यही स उत्पन्न हुआ है। यह स्थिति या नियति का बखान नहीं, कविता मे आज क जादमी की स्थिति या नियति का चरिताथ होना है।

पर यह भी सही है कि 'मुक्ति प्रमग' मे वाग्मितापूर्ण कथन का गौरवाहित किया गया है। स्थिति को चित्रित करने वाला मुहावरा यहा उत्तेजन और अत्युक्तिपूर्ण है। स्नायुविक तनाव म रचित होने के कारण इसम स्थिति का भावुक आस्फातन भी हुआ है। इससे बचा जा सकता था अगर कविता क बीच-बीच म साथक विवरणो की योजना ही जाती। भाषायी वि्यास म, वाक्य गठन और योजना म व्याप्त तनाव विवरणा द्वारा भी सतुलित हो सकता था पर कवि ने यह रास्ता नहीं चुना, उसन प्रतीक का रास्ता चुना है। इस कविता म सतुलन पदा करने का साधन है—केंद्रीय प्रतीक—'उग्रतारा' है। यह प्रतीक 'रहटरिन' का भी मानवीय स्थिति से जोड देता है। 'उग्रतारा' एसा ही केंद्रीय प्रतीक है। इस प्रतीक के माध्यम से अतर्ती एक्सूनता को साधा गया है।

ऐतिहासिक सदभों की ठोस उपस्थिति म मौजूदा यथाथ स्थिति के सदभ म मानवीय विडम्बना और सघप की चेतना का साक्षात्कार इधर की कई लयी कविताओं म—धूमिल की कविता 'पटकथा (कविता सग्रह ससद से सडक तक', 1972), बलदेव यशो की कविता 'उपनगर म वापसी' (कविता सग्रह 'उपनगर मे वापसी', 1974), अमृता भारती की कविता 'आज या कन या सौ बरस बाद,' (कविता सग्रह 'आज या कल या सौ बरस बाद' 1975), लीलाधर जगुडी की कविता 'बलदेव घटिक' (कविता सग्रह 'बची हुई पृथ्वी,' 1977) मणि मधुकर की 'घास का घराना' (कविता सग्रह 'घास का घराना तथा अय कविता', 1978) देखा जा सकता है। हा, उनके सरचनात्मक बिंदु और सघप चेतना के स्तर अलग-अलग हैं। 'पटकथा' म आजादी के मोहक स्वप्न क टूटन, दश, जनता जनतंत्र, दशभक्ति जैमी धारणाओं के भ्रष्ट और विषटित होने के परिणामस्वरूप पदा हुई स्थिति क परिप्रेक्ष्य का ('टूटी हुई चीजा के ढर मे/खोई हुई आजादी का अथ/दूहता रहा।) ग्रहण किया गया है। मूल्यगत विषटन के इस दौर मे 'मैं' का महभूसा होता है कि वह बबत के एक शमनाक दौर से गुजर रहा है। उम लगता है उहान किमी चीज को सही जगह नहीं रहने दिया है। तभी उसका सामना अपने हमशकन मे होता है जो उम सघप क लिए उन्नताना है। और, उमे रागना है—'भूमे आदमी का सबसे बडा तक/रोटी है' और वह उनकी आसार मे म जुट जाता है। 'मैं' और 'हमशकन' के नाटकीय विघात क दिना यह कविता एक सामाय कविता—ऐतिहासिक तथ्या और स्थितिया का बयान करने वाली कविता

ही रह जाती। नाटकीय प्रसंग से पूव इस कविता में भी व्योरे अधिन हैं और रहटरिक का दबदबा है। इस जग में 'परिदृश्यगन सघनता के साथ सयत अभि व्यक्ति के अनुशासन'¹ को कवि साध नहीं सपा है। कविता के उत्तराद्ध में नाटकीय विधान के कारण सपाटबयानी त्रिफिष्ट का व्यात्मक व्यवहारा में अवश्य चरिताय हुई है। विवत्प और 'पूजीवादी दिभाग' की टकराहट भी यही उभरी है।

'उपनगर में वापसी' कविता में स्वतंत्रता परवर्ती ऐतिहासिक सदम में व्यक्ति की विडमनापूण स्थिति और सघपशीलता का अच्छा चित्रण हुआ है। शहर के बनने और उठने के जम के साथ सोचते हुए शहरी संस्कृति के दबावों और तनावों को घेर रहे व्यक्ति की अभिव्यक्ति इस कविता में हुई है। व्यक्ति की मन स्थिति पर आघात देने वाली इस तरह की स्थितियाँ-परिस्थितियाँ का संयोजन कवि ने अत्यंत जागरूक होकर किया है और इस संयोजन में से ही संवेदना निष्पन्न हुई है। पूरे उपनगर में वही एक स्वतंत्र है जो पागल है। यहाँ स्थिति का मात्र चित्रण नहीं किया गया है बल्कि स्थिति सापेक्ष मन स्थिति को व्यापक मानवीय चेतना में घुला देने का प्रयत्न भी किया गया है।

उपनगर की हैसियत में से ही यहाँ मानवीय स्थितियाँ की पीड़ा और करुणा उभरी है। जसवत भगतू अमरू आदि पात्रों जीर उनसे सबद्ध प्रसंगा की नियोजना इस कविता को महत्त्वपूर्ण बना देती है। इनकी पीड़ा यातना का सदम आत्मगत न होकर सामाजिक राजनीतिक ही है। एक आर नेहरू युग का पागल है जो गठरी सा पडा है 'योजनाओं के धमाके से उसी का/सतुलन उडा है' दूसरी ओर विना बाह्यो का लडका भगतू कुबडा है 'इस समय वह धुआघार भाषणा में कोमा सा व्यथ है।' ऐसे में कवि की चिंता है 'वस्तुओं का अस्तित्व आपस में टकरा कर आज/नहीं पैदा करता कोई तीसरा अस्तित्व। कवि नम जम में सघपशील मानसिकता को अजित करता गया है। कविता की जनिम पकितया है 'मेन रोड पर चलता हुआ पागल सहसा बडबडाता है/उपस्थितियों से लेकर उपदशाओं में फँसे तब में झूलते वतमान/विकृत घुलते हुए/फिर अपनी भीगी कमीज को निचाड कर/फटकारता हुआ/प्राय चीखते हुए कहता है/कहा हो या/उपनाई आ रही है/मूज/जल्दी करो, दश्य बदलो।'

इस कविता में नाटकीय त्रियाओं और व्यापारों का कौशलपूर्ण ढंग से प्रयोग हुआ है और इनके माध्यम से वैचारिक प्रतिफलन संभव हो सका है। एक ही व्यक्ति है—मुलम्मा परतो में ढका हुआ जिसे आंतरिक एकालाप की पद्धति से यहाँ पकडा की कोमिश की गई है। इस नाटकीय विधान के कारण का-प्रगत प्रतित्रियाएँ भावुक, रुढ़ और मुनिश्चित होने से बच गई हैं।

अमृता भारती की लम्बी कविता—'आज या कल या सी वरस वाद' म वयवितक और सामाजिक राजनीतिक सदभों का अतमुफन और टकरावपूर्ण विधान हुआ है। इस कविता मे सघप और विद्रोह की वयवितक परिकल्पना से जुडी सामाजिक परिगतन की वाछा और उसके अतिविरोध प्रकट हुए है। स्थितिया के जो विवरण कवयित्री ने यहा दिए हैं, वे वाह्य ससार को ही नहीं, एक जटिल और उलझे हुए अतरंग ससार का भी उदघाटित करने हैं और उन दोना ससारो म तालमल स्थापित करण का भी प्रयत्न करते है। ये विवरण तनाव की उत्कटता से विश्रांति दिलाकर वाव्यगत तनाव को सघन और सतुलित भी करते है।

इस कविता मे वैयक्तिक प्रसगा से कवयित्री मन पर छापी हुई कथना व्यापक मानवीय चेतना के साथ जुड गयी है 'पत्थर की तरह बधी हुई कथना,' कवयित्री जानती है कि बहुत बडा बोझ है पर उसे यह भी एहसास है कि यह बोझ 'तब तक मेरे कंधे तोडता रहगा/जब तक/मिटटी म धस मेरे पैर/पृथ्वी के एक बडे हिस्से के साथ ऊपर नहीं उठने।' ये कवितया निरी आकाक्षा या बडबोली जभिव्यक्ति मान नहीं हैं। ये कवयित्री के सवेदनात्मक ज्ञान (सकृप भी) का प्रतिफलित करती हैं। 'यहा अनुभव का तात्कालिक और वैयक्तिक सदभ सामाजिक सदभ म घुल गया है ('जलना/और किसी को जलते हुए देखना/इन दोना की आच/पता नहीं कब बराबर हो गयी।' सवेदनात्मक स्तरा पर चलन वाला यह अनुचितन मानवीय आशयो को गहराने वाला है।

लीलाधर जगुडी ने कई लम्बी कविताएँ लिखी है पर 'बलदेव खटिक के अलावा अय कोई कविता विशेष प्रभावित नहीं कर पाती। उन कविताओ म कवि के लिए उत्तेजना और तनाव म तमीज करना मुश्किल हो गया है। युक्तियो भर बडबोले काय मुहावरे के कारण 'नाटक जारी है' एक असफल लम्बी कविता बन कर रह गयी है। पर 'बलदेव खटिक' एक विशिष्ट लम्बी कविता है। इसमे न किसी जाटयान का सहारा लिया गया है, न किसी फंटेसी या बिम्ब का। इसके केन्द्र म एक ऐसा विचार है जो एक क्रूर समकालीन स्थिति को धीरे धीरे उघाडता है आर उसे सघप चेतना स सम्बद्ध कर देता है। सवाल स्थिति की शब्दबद्ध करने का उतना नहीं है जितना यह कि इस वक्त कहा से लाय जाय ऐमे शब्द/जो हलफनामा बन सकें / जो तरफगारी कर सकें।' इसके लिए कवि न रगतू और बलदेव खटिक जैसे ठोस और वास्तविक चरित्रा की सन्धिय सामाजिक सत्ताओ को उभारा है। दरअसल, ये चरित्रा रही, प्रतिरोध क विचारा के साथ जुडी हुई विसगतियो और त्रासद अनुभवो के बाद लिये जाने वाले निणयो के मूत रूप है। 'सवालो के जटयो से भरा हुआ अकेला आदमी (रगतू) अगर एक मानवीय दुघटना है तो सिपाही बलदेव खटिक की

स्थिति भी कम विचित्रनापूण नहीं है उसारी छाती पर गालिया का पट्टा है। उसके हाथ में एक एक बट्टक है/उस गहा मानूम वह जिसकी रक्षा कर रहा है।' वह उस पुलिस व्यवस्था का एक जन्ता सा मिपाही है जो भ्रष्टता का बढावा देती हुई अयायी और जाततायी के पक्ष में चली जाती है। उसे ऐसी ही व्यवस्था की भ्रष्ट, काईया और मानव विरोधी कायवाहियों को पूरा करने में रूपा पडता है। पर पुलिस का यही वफादार मिपाही एक दिन स्वयं का पुलिस के शिखजे में असहाय सा पाता है। वह मा को जस्पताल दाखिल नहीं करा पाता और उसकी मा दम तोड देती है। वह वापस थाने आना है तो गुलेजाम भ्रष्टाचार दपता है। वह अपनी जाघो के सामन चाय को भरता हुआ देघता है और अपना सतुलन खोकर पागलो सा व्यवहार करने लग जाता है। तनाव और आशोश की तीव्रतम अवस्था में वह धडाधड पायर करता है/बट्टक के बट का थाने की दीवार में मार कर/तोड देता है और सीढिया उतर कर, सडन पर मरे हुए कौना को लापकर फरार हो जाता है। उसका इम तरह पागल हा जाना निस्मृष्ट, परिवेश की त्ररता, भ्रष्टता और ओछी राजनीति का परिणाम है। इस मन स्थिति में उसकी उत्तेजक और आनामन प्रतिश्रिया यह सूचित करती है कि उसे अपने दुश्मन की सही पहचान नहीं है। पर क्या यह कविता परिस्थिति के इस धिनीन और तरप सदभ के चित्रण तक सीमित रह गयी है? क्या विसंगति और विडम्बना के सकेता से आगे यह कविता कोई संकत नहीं देती? क्या यह कविता मात्र यह सुचाती है कि जभावग्रस्त पीडित और शोपित लोगो की मुक्ति का रास्ता मौत और पागलपन में से गुजरता है? हम समता है कि कवि स्थिति की विद्रूपता को उघाडने वाले स्पष्ट संकेत देता है क्या कि वह जानता है कि विद्रोह की यह प्रक्रिया यही खत्म नहीं होगी—यह और भी तीव्रतर होगी—भ्रष्ट और जाततायी व्यवस्था के प्रति और भी हिमक क्याकि 'देश में कुछ लोग, पेट से ही पागल होकर जा रहे हैं। उन्हें अपने दुश्मनकी पहचान है इसीलिए वे जब पायर करेंगे तो यह तय है कि/इस बार कौनो नहीं मरेंगे।'

मणि मधुकर ने जनक लम्बी कविताएँ लिखी है पर अभी हाल ही में उनकी लम्बी कविता ॥ का एक कविता संग्रह घास का घराना तथा अन्य कविताएँ प्रकाशित हुआ है। इससे पूर्व 'खल खड पाखंड पव' नाम से उनकी एक लम्बी कविता पुस्तकान्कार छप चुकी है। पर लम्बी कविता की अपेक्षा और प्रतिमानों पर 'घास का घराना' जितनी सही और खरी उतरती है उतनी उनकी अन्य कई कविता नहीं। इस कविता में परिदृश्य चित्रण में ही जात्मविडम्बना पूरा स्थितिवा का उभरता हुआ दिघाया गया है। परिदृश्य को जकित करने वाली दृष्यावली इस कविता को निश्चय ही एक ठोस सदभ प्रदान करती है पर इससे भी बन्वर, ध्यान देने की बात यह है कि परिदृश्यगत बपोरे कवि के दृश्य निरूपण तक सीमित नहीं रह हैं वे पाठक का दृश्य व पार भी ले जान है—दृश्य के रशे

रेशे को उधाड़ते हुए, उह मानवीय व्यवहारो के रूप में पेश कर देते हैं। परिदृश्य से लिपटी हुई स्थितिया अपनी अनुगूँजो सहित, कवि के दृष्टिकोण को प्रतिफलित करती हुई उपस्थित हो जाती है। परिदृश्य और कवि दृष्टि इस कविता में इस तरह अनुस्यूत हैं कि उह अलग कर पाना कठिन है। साथ-साथ व्योरो के बल पर कवि एक जानी पहचानी परिस्थिति और देश-वाल को मूत करन का प्रयत्न करता है। हताशा से भरी, निराशा और विडम्बनापूर्ण स्थितिया के यथाथ को झेलते हुए भी कवि परास्त नहीं है। 'वह तलघर में नहीं, तमचे में घुसना पसंद करता है ताकि बाजीगरा की बुनियाद को बचकार सके। निश्चय ही यह विद्रोही भाव का वायम रखने की आकांक्षा है। यही कविता का माहौल है और यह माहौल ही इस कविता की केंद्रीय धुरी है। स्थितिया पात्र और उनकी टकराहट इसी माहौल में से उभरती है और यातना सदर्भों को अधिक तीव्र और सघन बनाती जाती है।

व्योरा और तनाव विदुआ के इस सयाजन में इस कविता को विशिष्ट बना दिया है। यातना के जिन विभिन्न सदर्भों का जिक्र कविता में हुआ है, वे सब केवल वैयक्तिक नहीं हैं। एक विशेष परिवेश में जीते, मरते खपते जन समूह की यातना का बोध जगाते हैं जो कही स्थितिया के चित्रांकन के स्तर पर उभरी है तो कही पात्रों के रूप में। राजस्थान के ठेठ रतीने वातावरण को वहाँ की सामाजिक विषमता, शोषण और अत्याचारा को, मनुष्य की दारुण, यातनापूर्ण स्थितियों को, वहाँ के लोगों की निरीह, असहाय और उत्पीड़ित मन स्थितिया के सबभ मरकर वहाँ फैलाया और ताना गया है। रावगढ़ी का सुमरू है जिसके पास जपन जड़ों का कोई सिलसिलेवार व्योरा नहीं है। सोटिया की मार से सूजी हुई उसकी कमर 'कभी फोड़े की भाँति टीसने लगती है/कभी मवाद में लिसफिस हो उठती है।' सुमरू की तरह सरदू, नरसी आदि अनक पात्र हैं जो शोषकों और पुलिस के अत्याचारों से पीड़ित, दबे घुटे, सहमे एक के बाद एक कविता में आते गये हैं। 'व जुझारू जन/जिंदा है पर उनके भीतर मौत पसरी हुई है। व जीवन में जुताई में शामिल हैं इसलिए मौत का नहीं जानते।' यह विडम्बना ही है कि जिनके कथा पर जनतंत्र टिका है वे 'कतई नहीं जानते कि वे क्या हैं और क्यों हैं/उह अपनी हैसियत अपनी ताकत की/कोई परवाह नहीं न ही यह मलाल कि/मालो माल वे बेगारी में इस्तेमाल किये जा रहे ह।'

कविता के अंतिम अंश में कवि का स्वर उग्र और निष्णयात्मक हो गया है। ध्यान देने की बात है कि यह उग्रता और निष्णयात्मकता उत्तेजना या हडबडी का परिणाम नहीं है इनके पीछे वास्तविक स्थितिया की तटख और नूर मच्चाइया ह। स्वर की उग्रता और निष्णयात्मकता, कृषि, स्थितिया की विमंगलियों और अन्त विरोधा को झलते हुए अर्जित की गई है इसीलिए खरी और विश्वसनीय लगती है 'अंत में भूल नहीं पाता यह सब। रपना रपता ही सही मुझे इम बदमलूकी

का बदला लेना है। एतराज के उच्चारण में एकाग्र होना है।' यह निणय वास्तविक स्थितियों की कवि की पहचान से विच्छिन्न नहीं है, बल्कि उसी से उत्प्रेरित है और सघन चेतना में फँसते जाने की गवाही देता है। वह जानता है कि शोषितों और पीड़ितों के 'पास खोने के लिए कुछ नहीं है। अपनी विवशता और उदासी के सिवा।' कवि को 'उनके दमघोस और दुःसाहस पर भरोसा है।' उसे विश्वास है कि 'जिस दिन वे तय कर लेंगे कि 'अब और गलाजत नहीं बढ़वू के बफारा को ताजगी में तब्दील करने के लिए—पिल जायेंगे। स्थितियों के दमघोटु होने के बावजूद मनुष्य का और मानवीय मरार को खत्म होना से बचाने के लिए अन्तर्वरत विद्रोह और सघन ही एक मात्र विकल्प बचते हैं और इसमें सन्देह नहीं कि मणि मयुकर ने इन्हें विश्वसनीय ढंग से प्रस्तुत किया है।

लम्बी कविताओं के इस विकास क्रम में इस कविता के अनेक पहलू विविध रूप और स्तर उद्घाटित हुए हैं। इसके स्पष्टतः तीन दौर लभित किए जा सकते हैं—छायावादी लम्बी कविताएँ नयी कविता आन्दोलन के दौरान रचित लम्बी कविताएँ और सन साठ के प्राद की समकालीन लम्बी कविताएँ। पहले दौर में आध्यात्मिक तत्त्व केन्द्र में रहा है दूसरे दौर में विम्व और तीसरे दौर में विचार। समकालीन लम्बी कविताओं में आध्यात्म अपने स्थूल रूप में महत्त्वहीन होता गया है, विचार और स्थिति केन्द्र में आ गयी हैं और आध्यात्मिक तत्त्व वचारिक या फटेमीगत सत्ता में विलीन होता गया है। इनमें ऐतिहासिक राजनीतिक प्रसंगों-सदर्थों के सन्निधिकरण के द्वारा केंद्रीय विचार या स्थिति में गभित सघन को तीव्रतर किया गया है जिससे लम्बी कविता के रचना विधान में वचारिक सक्रियता बढी है जिस से मानवीय विडम्बना और सघनशीलता से निष्पन्न तनाव के विविध रूप इधर की लम्बी कविताओं में अभिव्यक्त हो सके हैं। विचार और विम्व का समायोजन और सतुलन इन समकालीन लम्बी कविताओं के एक खास पहलू के रूप में उभरा है।

—नरेन्द्र मोहन

असाध्य वीणा

‘अज्ञेय’ (स० ही० वात्स्यायन)

जन्म सन 1911, कसिया (उ० प्र०)

कृतिया

कविता सग्रह भग्नदूत (1933), चिन्ता (1942), इत्यलम (1946), हरी घास पर क्षण भर (1949), बावरा अहेरी (1954), इन्द्रधनु रौंदे हुए (1957), अरी ओ कृष्णा प्रभामय (1959), आगन के पार द्वार (1961), क्योंकि मैं उसे जानता हूँ (1970), पहले मैं सनाटा बुनता हूँ (1974), ‘महा वक्ष के नीचे’ (1977)

उपवास शेखर एक जीवनी—प्रथम भाग (1940-41), द्वितीय भाग (1944), नदी के द्वीप (1951), अपने अपने अजनबी (1961)

कहानी सग्रह विपथगा (1937) परम्परा (1944) कोठरी की बात (1945), शरणार्थी (1948) जयदोल (1951), अमर वल्लरी (1954), ये तेरे प्रतिरूप (1961)

आलोचना विशकृ (1945), आत्मेनपद (1960)

यात्रावृत्त अरे यायावर रहेगा याद (1953), एक बूद सहसा उछली (1960)

सम्प्रति ‘नया प्रतीक’ मासिक का संपादन ।

पता 110, मोल्फ लिंक, लोदी रोड, नई दिल्ली 110003

प्रस्तुत कविता ‘असाध्य वीणा’ (1961) कवि के कविता सग्रह ‘आगन के पार द्वार’ में संकलित है ।

[सघन निविड में वह अपने को
सीप रहा था उसी किरौटी तरु को
कौन प्रियवद है कि दमकर
इस अभिमन्त्रित कारुवाद्य के सम्मुख आवे
कौन बजावे
वह वीणा जो स्वयं एक जीवन भर की साधना रही
भूल गया था केशकवली राजसभा को
बदल पर अभिमन्त्रित एक अकेलेपन में डूब गया था]

असाध्य वीणा

आ गये प्रियवद ! केश कम्पली ! गुफा गेह !
राजा न आमन लिया । कहा
"कृतकृत्य हुआ मैं तात ! पधारे आप
भरोसा है अब मुझको
साध आज मेरे जीवन की पूरी होगी ।"

लघु सकेत समझ राजा का
गण दौड़े । लाये असाध्य वीणा
साधक के आगे रख उसको, हट गये ।
समा की उत्सुक आँखें
एक बार वीणा को लख, टिक गयी
प्रियवद के चेहरे पर ।

"यह वीणा उत्तराखण्ड के गिरि प्रातर से
— घने बनो में जहा तपस्या करते हैं व्रतचारी—
बहुत समय पहले आयी थी ।
पूरा तो इतिहास न जान सके हम
कि तु सुना है
वज्रकीर्ति ने मानपूत जिस
अति प्राचीन किराटी तरु से इसे गढ़ा था—
उसने काना में हिम शिखर रहस्य बहा करते थे अपने,
कंधा पर वादल सोते थे,

उसकी करि शुष्ण सी डालें
हिम वर्षा से पूर बन यूथा का कर लेती थी परित्राण,
पोटर म भातू बसत थे
बेहरि उसके बल्यल से कंधे म्जलाने आते थे ।
आर— गुना है— जड उसकी जा पहुची थी पाताल लोच,
उसकी म ध प्रवण शीलता से पण टिना गग वागुनि सोता था ।

उसी विरीटी तम से वज्रकीर्ति न
सारा जीवन इस गढा
हठ साधना यही थी उम साधन की —
वीणा पूरी हुई साथ साधना साथ ही जीवा-लीला । '
राजा रके सास लम्बी लवर फिर वाले
मेरे हार गय सब जात माने कलावन्न
भवकी विद्या हो गयी अकारय दप चूर,
कोई जानी गुणी आज तब इस न साध सका ।
अब यह असाध्य वीणा ही ट्यात हो गयी ।
पर मेरा अब भी है विश्वास
वृच्छ तप वज्रकीर्ति का व्यथ नहीं था ।
वीणा घोलेगी अवश्य, पर तभी
इसे जब सच्चा स्वर सिद्ध गाय में लेगा ।
तात ! प्रियवद ! लो, यह सम्मुख रही तुम्हारे
वज्रकीर्ति की वीणा,
यह मैं, यह रानी भरी सभा यह
सब उदग्र पयुत्सुक,
जन मान प्रतीक्षमाण ! ”

वेशकम्बली गुफा गेह ने खोला कम्बल ।
घरती पर चुपचाप बिछाया ।
वीणा उस पर रख पलक मूदकर, प्राणधीच,
करके प्रणाम,
अस्पश छुअन से छए तार ।
धीरे बोला 'राजन ! पर मैं ता
कलावत हू नहीं शिष्य साधक हू —
जीवन के अनरहे सत्य का साणी ।

वञ्चकीर्ति ।

प्राचीन किरीटी-तरु ।

अभिमन्त्रित वीणा ।

ध्यान मात्र इनका ता गदगद बिह्वल कर देने वाला है ।”

चुप हो गया प्रियवद ।

सभा भी मौन हो रही ।

बाद्य उठा साधक ने गोद रख लिया ।

धीरे-धीरे चुक उस पर, तारा पर मस्तक टेक दिया ।

सभा चकित थी—अरे, प्रियवद क्या साता है ?

केशकम्बली अथवा हा कर पराभूत

झुक् गया बाद्य पर ?

वीणा सचमुच क्या है असाध्य ?

पर उस स्पन्दित सन्नाट म

मौन प्रियवद साध रहा था वीणा—

नहीं, स्वयं अपन को शोघ्र रहा था ।

सधन निविड म वह अपने को

साप रहा था उसी किरीटी तरु को ।

कौन प्रियवद है कि दम्भ कर

इस अभिमन्त्रित काहवाद्य वे सम्मुख आव ?

कौन वजावे

यह वीणा जो स्वयं एक जीवन भर की साधना रही ?

भूल गया था केशकम्बली राज सभा को

कम्बल पर अभिमन्त्रित एक अकेलेपन में डूब गया था

जिसमें साक्षी के आगे था

जीवित वही किरीटी-तरु

जिसकी जड़ वासुकी के फन पर थी आधारित,

जिसने कधो पर बादल सोते थे

और कान में जिसने हिमगिरि कहन से अपन रहस्य ।

सजोधित कर उस तरु को करता था

नीरव एवालाप प्रियवद ।

“आ विशाल तरु !

शत सहस्र पल्लव न पतशरा ने जिसका नित रूप सवारा
 कितनी बरमाता कितना यद्योता १ आरती उतारी,
 दिन भोरे बर गये गुजरित,
 रातो म शिल्ली ने
 अनयय मगत गान सुनाये,
 नाथ सवेरे अनगिन
 आची-हे पग बुल की मोद भरी थोडा —पावनि
 डाली डाली तो बपा गयी—
 ओ दीघकाय !
 ओ पूरे झारखण्ड के अग्रज
 तात, सपा, गुट आश्रय,
 नाता महच्छाय
 जो व्याकुल मुखरित बन ध्वनिया के
 वृन्दगान के मूक्त रूप
 मैं तुझे सुनू
 देखू घ्याऊ
 अनिमेष स्तब्ध, सयत, सयुत, निर्वात
 बहा साहस पाऊ
 छ सबू तुझे
 तेरी काया को छेद बाधवर रची गयी वीणा का
 किरा स्पर्द्धा से
 हाथ करे आघात
 खीनने को तारो से
 एक चोट म वह मचित्त सगीत जिसे रचने म
 स्वय न जाने कितनो के स्पन्दित प्राण रच भये ।

‘ नही नही ! वीणा यह मेरी गोद रखी है रहे
 किन्तु मैं ही तो
 तेरी गोद बठा मोद भरा बालक हू,
 ओ तरु तात ! सभाल मुझे,
 मेने हर किलब
 पुलक म डूब जाय
 मैं सुनू

शुनू
विस्मय से भर आकू
तेरे अनुभव का एक एक अतः स्वर
तेरे दोलन की लोरी पर झूमू मैं तमम—
गा तू
तेरी लय पर मेरी साँसें
भरें, पुरे, रीते, विध्वान्ति पाये ।

“गा तू ।
यह वीणा रखी है तेरा अग अपग ।
किंतु अगी, तू अक्षत, आत्म भरित,
रस विद्,
तू गा
मेरे अधियारे अन्तस् म आलाव जगा
स्मृति का
धृति का—
तू गा, तू गा, तू गा, तू गा ।

“हा, मुझे स्मरण है
बदली—नोंध—पत्तिया पर वर्षा बूदा की पटपट ।
घनी रात में महुए का चुप चाप टपकना ।
चींके खग शावक की चिहुक ।
शिलाओ को दुलराते वन झरने के
द्रुत लहरीले जल का बल निनाद ।
कुहरे में छनकर आती
पवती माध के उत्सव-ढोलक की थाप ।
गडरिये की अनमनी वासुरी ।
कठफोड का ठेका । फुलसुधनी की आतुर फुरकन ।
औस बूद की ढरकन—इतनी कोमल, तरल कि झरते थरते मानो
हरसिगार का फूल बन गयी ।
भरे शरद के ताल-लहरियो की सरसर ध्वनि ।
कूजा का क्रेकार । काँद लम्बी टिटिटभ की ।
पख युक्त सायक-सी हस बलाका ।
चीड बना मे गध-अध उमद पतंग की जहा-तहा टवराहट

जल प्रपात का प्लुत एक स्वर ।

पिलनी दादुर, कोकिल नातक की झकार पुवारो की यति म
ससृति की साय साय ।

“हा, मुने स्मरण है ।

दूर पहाडो से काले मेघो की दाड

हाथियो का मानो चिघाड रहा हा यूथ ।

घरघराहट चढती बहिया की ।

रेतीली ऋगार का गिरना छप् छडाप ।

सया की फुफवार तप्त,

पेडो का अररा कर टूट-टूटकर गिरना ।

ओले की करीं चपत ।

जमे पाले से तनी बगारी-सी सूखी घासा की टूटन ।

ऐठी मिटटी का स्निग्ध घाम म धीरे धीरे रिसना ।

हिम तुपार के फाह घरती के घावा को सहलाते चुप चाप ।

पाटियो मे भरती

गिरती चटटानो की गूज—

वापती म द्र गूज—अनुगूज—सास खोयी सा, धीरे धीर नीरव ।

‘ मुझे स्मरण है

हरी तनहटी म छोटे पेडा की ओट ताल पर

यधे समय वन-पशुआ की नानाविध आतुर-तप्त पुवारें

गज, घुघुर, चीय भूर हुक्का चिचियाहट ।

कमल कुमुद पत्रो पर चोर पैर द्रुत धावित

जल पछी की चाप ।

घाप दादुर की चरित्त छलागा की ।

पथी के पाडे की टाप जधीर ।

अचरल धीर घाप भंसा के भारी सुर की ।

मुने स्मरण है

उगव ति तिज मे

निग्न भार की पहली

जय तारा है जाम-भूट को

उम दान की सहगा चाकी सो गिरग ।

और दुपहरी म जग
 घास फूल जनतेमे खिल जात है
 मौमाखियाँ अमरुष धूमती बरती हैं गुजार —
 उस लम्बे विलम्बे क्षण का तन्द्रालस ठहराय ।
 और साझ को
 जब तारा की तरल कपकपी
 स्पशहीन शरती है—
 माना नभ म तरल-नयन टिठवी
 नि सद्य सवत्सा मुचती माताआ के आशीवाद —
 उस सधि निमिष की पुलकन लीयमान ।

“मुझे स्मरण है
 जोर चिन प्रत्यक
 स्तब्ध विजडित करता है मुझको ।
 सुनता हूँ मैं
 पर हर स्वर बम्पन लेता है मुझका मुझम सोख—
 वायु मा नाद-भरा मैं उड जाता हूँ ।
 मुझे स्मरण है—
 पर मुझका मैं भूल गया हूँ
 सुनता हूँ मैं—
 पर मैं मुझसे पर, शब्द म लीयमान ।

‘मैं नहीं, नहीं । मैं नहीं नहीं ।
 ओ रे तरु ! जो घन !
 जो म्वर सभार !
 नाद भय ससनि !
 आ रस प्लावन !
 मुझे धामा कर—भूल अविचनता को मेरी—
 मुझे ओट दे—डक से—छा ले
 ओ शरण्य !
 मेर गूरोपन की तरे सोय स्वर सागर का ज्वार डुबाले ।
 जा, मुझे भुला,
 तू उनर वीन के तारो मे
 अपन से गा—

40 वही भी पतम कविता नहीं होती

अपने को गा

अपने पग-मुल को मुचरित कर

अपनी छाया में पले मृगा की चौकड़ियाँ को ताल रांध

अपने छायातप, वृष्टि पवन, पल्लव तुमुमा की राय पर

अपने जीवन सचय को कर छद्मवत ।

अपनी प्रज्ञा को वाणी दे ।

तू गा, तू गा—

तू सन्निधि पा—तू छो

तू आ—तू हो—तू गा ! तू गा !

राजा जागे ।

समाधिस्थ संगीतकार का हाथ उठा था—

वापी धी उगलियाँ ।

अलस अगड़ाई लेकर माना जाग उठी धी वीणा

किलक उठे थे स्वर शिशु ।

नीरव पद रखता जालिक मायावी

सधे करो से धीरे धीरे धीरे

डाल रहा था जाल हेम-तारो का ।

सहसा वीणा झनझना उठी—

संगीतकार की आखों में ठंडी पिघली ज्वाला सी झलक गयी —

रोमांच एक त्रिजली सा सबके तन में दौड़ गया ।

जबतरित हुआ संगीत

स्वयम्भू

जिसमें सोया है अखण्ड

ब्रह्मा का मौन

अशेष प्रभामय ।

डूब गये सब एक साथ ।

सब अलग अलग एकाकी पार तिरें ।

राजा ने अलग सुना

जयलैवी यश काय

वरमाता लिये

गाती थी मंगल गीत,

दु-दुभी दूर वहा वजती थी
 राज मुकुट सहसा हलका हो आया था, माना हा फूल सिरिस का ।
 ईर्ष्या, महदाकाशा, द्वेष, चाटुता
 सभी पुराने लुगड़े से झर गय, निघर आया था जीवन-काचन
 धमभाव से जिसे निछावर वह कर देगा ।

रानी ने अलग सुना
 छटती बदली मे एक कौध वह गयी—
 तुम्हारे ये मणि माणिक, कठहार, पट वस्त्र,
 मेखला किकिणि—
 सब अधकार के कण है य ! जालोक एक है
 प्यार अनय ! उसी की
 विद्युल्लता घेरती रहती है रस भार मेघ को,
 थिरव उसी की छाती पर, उसम छिप कर सो जाती है
 आश्वस्त, सहज विश्वास भरी ।
 रानी
 उस एक प्यार का साधेगी ।

सवने भी अलग अलग सगीत सुना ।
 इसका
 वह कृपा वाक्य या प्रभुआ का—
 उसको
 आतन मुक्ति का आश्वासन
 इसको
 वह भरी तिजारी मे सोन की धनक—
 उसे
 बटली मे बहुत दिनों के बाद अन्न की साधी खुदनुद ।

किसी एक को नयी वधू की सहमी सी पायल ध्वनि ।
 किसी दूसरे को शिशु की किलकारी ।
 एक किसी को जाल फँसी मछली की तडपन—
 एक अपर को चढ़व मुक्त नभ म उडती चिडिया की ।
 एक तीसरे का मडी की ठेलमठेल, ग्राहका की आस्पदा भरी बोलियां,
 चौथे को मन्दिर की ताल युक्त घटा ध्वनि ।

42 कही भी घटम कविता गही हाती

और पाचवे को लोट पर सधे हथौड़े की गम घाट
अछोरठे को लगर पर कसमगा रही नीरा पर लहरा की अकिराम थगव ।
बटिया पर कमरौघे की रु धी चाप सातवे क लिए—
और आठवे को कुलिया की कटी मड स बहते जल की छुल छुन ।

इसे गमरा नटिटा की एडी के घुघरू की—
उसे युद्ध का डोल
इसे सझा-गोधूली की लघु टुन-टुन—
उस प्रलय का डमरू-नाद ।
इमको जीवन की पहली अगडाई
पर उसका महात्मम विपराल काल ।
सब झूवे, तिरे, विषे, जाग—
हो रहे कशबद, स्तब्ध
इयता सबकी अनग-अलग जागी,
सघीत हुई
पा गयी विलय ।
वीणा फिर मूक हा गयी ।

साधु ! साधु !”
राजा सिंहासन से उतरे—
रानी न जपित री सतलडी माल,
जनता विह्वल कह उठी ' धय ।
ह स्वरजित ! धय ! धय !”

सगीतकार
वीणा को धीरे से नीचे रख, ढँक—माना
गाने म सोये शिशु को पालने डाल कर मुग्धा मा
हट जाय, पीठ से दुलराती—
उठ खडा हुआ ।
बढते राजा का हाथ उठा करता आवजन,
वाला
'श्रेय नहीं कुछ मेरा
म तो डूब गया था स्वय शूय म—
वीणा के माध्यम से अपने को मन

सब कुछ को सौंप दिया था—
 सुना आपने जो वह मेरा नहीं,
 न वीणा का था
 वह तो सब कुछ की तथता थी—
 महाशूय
 वह महामौन
 अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
 जो शब्दहीन
 सब में गाता है।”

नमस्कार कर मुड़ा प्रियवद केशकम्बरी । लेकर कम्बल गह गुफा को चला गया ।
 उठ गयी सभा । सब अपने अपने काम लग ।
 युग पलट गया ।

प्रिय पाठक ! या मेरी वाणी भी
 मौन हुई ।

अंधेरे में

गजानन माधव 'मुक्तिबोध'

जन्म सन् 1917, शिवपुरी (ग्वालियर) मृत्यु सन् 1964

कृतियाँ

कविता संग्रह चाद का मुह टेढ़ा है ।

उपन्यास विपात्र

कहानी-संग्रह काठ का सपना, सतह से उठता आदमी

आलोचना कामायनी एक पुनर्विचार, एक साहित्यिक की डायरी, नयी कविता और आत्म संधप, नयी कविता का सौंदर्य शास्त्र
प्रस्तुत कविता 'अंधेरे में' (1964) मुक्तिबोध के कविता-संग्रह
'चाद का मुह टेढ़ा है,' में संकलित है ।

[अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे ।
तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब ।
पहुचना होगा दुगम पहाड़ों के उस पार
तब वही देखने मिलेगी बाँहे
जिसमें कि प्रतिफल कापता रहता
अरूण कमल एक]

अधेरे मे

जिंदगी म
कमरो म अधेरे
लगाता है चक्कर
काई एक लगातार,
आवाज़ पैरा की देती है सुनाई
बार-बार बार बार,
बह नही दीखता नही ही दीखता,
किन्तु, वह रहा घूम
तिलस्मी खोह म गिरपतार कोई एक,
भीत पार आती हुई पास से,
महन रहस्यमय अघवार ध्वनि-सा
अस्तित्व जनाता
अनिवार कोई एक,
धीर मेरे हृदय की धक धक
पूछती है—वह कौन
सुनाई जो देता, पर नही देता दिखाई !
इतन म अकस्मात गिरते है भीत से
फूले हुए पलिस्तर
पिरती है चूने भरी रेत
घिसकती है पपडिया इस तरह—
सुद-य सुद
कोई बच्चा चेहरा घन जाता है

स्वयमपि

मुख बन जाता है दिवाल पर

नुकीली नाक और

भव्य ललाट है,

दृढ़ हनु,

कोई अनजानी आ पहचानी आकृति ।

कौन वह दिखाई जो देता, पर

नहीं जाना जाता हैं ॥

कौन मनु ?

वाहर शहर के, पहाडी क उस पार तालाब

अधेरा सब ओर

निस्तब्ध जल,

पर, भीतर से उभरती है सहसा

सलिल के तम श्याम शीशे म काई श्वेत आकृति

कुहरीला कोई बडा चेहरा फैल जाता है

और मुसकाता है,

पहचान बसाता है,

किंतु, मैं हतप्रभ,

नही वह समझ मे आता ।

अरे ! अरे ! !

तलाब के आस पास, अधेरे म बन बक्ष

चमक चमक उठत हैं हरे-हरे अचानक

बक्षा के शीश पर नाच-नाच उठती हैं विजलिया

शाब्बाए, डालिया झूमकर क्षपट कर

चीख, एक दूसरे पर पटकती हैं सिर कि अकस्मात्—

बक्षो के अधेरे मे छिपी हुई किसी एक

तिलस्मी घोह का शिला द्वार

खुलता है घड से

घुसती है साल-लाल मशाल अजीब-सी

अन्तराल विरर के तम म

सान-सान कुहग,

बुहरे मे, सामने, रक्तालोक स्नात पुरुष एक,
रहस्य साक्षात् ।।

तजो प्रभावमय उसका ललाट देख
मेरे अग अग म अजीब एक धरधर ।
गोरवण, दीप्त दृग, सौम्य मुख
सम्भावित स्नेह सा प्रिय-रूप देखकर
विलक्षण शक्ता,
भय आजानुभुज देखते ही साक्षात्
गहन एक सदेह ।

वह रहस्यमय व्यक्ति
अब तक न पायी गई मेरी अभिव्यक्ति है,
पूण जवस्था वह
निज-सम्भावनाआ, निहित प्रभावो प्रतिमाआ की,
मेरे परिपूण का आविर्भाव,
हृदय मे रिस रहे ज्ञान का तनाव वह
आत्मा की प्रतिमा ।
प्रश्न थे गम्भीर, शायद खतरनाक भी
इसलिए बाहर के गुजान
जगला से आती हुई हवा ने
फूक मार एकाएक मशाल ही बुझा दी—
कि मुझको या अधरे म पण्डकर
मौत की सजा दी ।

किसी काले डेश की घनी काली पट्टी ही
आंखो मे बध गयी,
किसी छडी पाई की सूली पर मैं टाग दिया गया,
किसी शून्य बिन्दु के अधियारे खड्डे म
गिरा दिया गया मैं
अचेतन स्थिति म ।

[2]

गूनापा सिहरा,
।घर म ध्वनिया क बुलबुले उभरे,

शून्य के मुख पर सलवटें स्वर की,
 मेरे ही उर पर, धसती हुई सिर
 छटपटा रही हैं शब्दों की लहरे
 मीठी है दुःसह ॥
 अरे, हा, साकल ही रह रह
 वजनी है द्वार पर ।
 कोई मेरी बात मुझे बताने के लिये ही
 बुलाता है - बुलाता है
 हृदय को सहला मानो किसी जटिल
 प्रसंग में सहसा होठा पर
 हाठ रख कोई सच-सच बात
 सीधे सीधे कहने को तडप जाय और फिर
 वही बात सुनकर घस जाय मरा जी—
 इस तरह, साकल ही रह रह वजती है द्वार पर
 आधी रात इतने अंधेरे में कौन आया मिलने ?
 विमन प्रतीक्षातुर कुहरे में घिरा हुआ
 द्युतिमय मुख—वह प्रेम भरा चेहरा—
 भाला भाला भाव—
 पहचानता हूँ बाहर जो खड़ा है ॥
 यह वही व्यक्तित्व है जो हा ।
 जा मुझे तिलस्मी खोह में दिखा था ।
 अवसर जनवसर
 प्रकट जो होता रहता
 मेरी सुविधाओं का न तनिक खयाल कर ।
 चाहे जहाँ, चाहे जिस समय उपस्थित,
 चाहे जिस रूप में
 चाहे जिन प्रतीकों में प्रस्तुत,
 इशारे से बताता है, समझाता रहता
 हृदय को देता है बिजली के झटके ॥
 अरे, उसके चेहरे पर खिलती हैं सुबह,
 गालों पर चट्टानी चमक पठार की
 आँखों में किरणिली शान्ति की लहरें,
 उसे देख, प्यार उमड़ता है अनायास ।
 मृगतता है - दरवाजा खोलकर

बाही म बस लू

हृदय म रग लू

घुल जाऊ, मिल जाऊ, लिपट कर उससे
परन्तु, भयानक खड्डे के अंधेरे मे आहत
और छत विक्षत, मैं पडा हुआ हू,
शक्ति ही नहीं है कि उठ सकू जरा भी
(यह भी तो सही है कि

कमजोरियो से ही लगाव है मुझको)

इसीलिए टालता हू उस मेरे प्रिय का

वतराता रहता है,

डरता हू उससे ।

वह बिठा देता है तुम शिखर के

पतरनाक, सुरदरे बगार-तट पर

शाचनीय स्थिति मे ही छोड देता मुझको ।

बहता है—“पार करो पवत सवि के गह्वर,

रस्सी के पुल पर चलकर

दूर उस शिखर-कगार पर स्वय ही पहुँचा”

अरे भाई, मुझे नहीं चाहिए शिखर की यात्रा

मुझे डर लगता है ऊँचाईयो से

बजन दो साकल ! !

उठने दो अधरे मे ध्वनियो के जुलबुले,

वह जन बसे ही

आप चला जायेगा आया था जसा ।

खड्डे के अंधेरे मे मैं पडा रहूंगा

पीडाए समेटे ! !

क्या करू क्या नहीं करू मुझे बताओ

इस तम शून्य मे तैरती है जगत् समीक्षा

की हुई उसकी

(सह नहीं सकता)

विवेक विशोभ महान् उसका

तम अंतराल मे (सह नहीं सकता)

अधियारे मुझमे छूँति-आवृत्ति-सा

भविष्य का नशा दिया हुआ उसका

सह नहीं सकता ! !

52 कही भी छतम कविता नहीं होती

नहीं नहीं, उसको मैं छोड़ नहीं सकूंगा,
सहना पड़े—मुझे चाहे जो भले ही ।

कमजोर घुटनों को बार बार मसल,
लडखडाता हुआ मैं
उठता हूँ दरवाजा खोलने
चेहरे के रक्तहीन विचित्र शून्य को गहरे
पाछता हूँ हाथ से,
अधेरे के ओर छोड़ टटोल टटोलकर
बढ़ता हूँ आगे,
परो म महसूस करता हूँ धरती का फँलाव,
हाथों में महसूस करता हूँ दुनिया
मस्तक अनुभव करता है जाबाब
दिल में तडपता है अधेरे का अ-दाज,
आखें ये तथ्य को सूघती सी लगती,
केवल शक्ति है स्पश की गहरी ।
आत्मा में, भीषण
सत चित्त बदना जल उठी, दहकी ।
विचार हो गये विचरण सहचर ।
बढ़ता हूँ आगे
चलता हूँ सभल सभल कर
द्वार टटोलता,
जग खायी जमी हुई जबरन्
सिटकनी हिलाकर
जोर लगा, दरवाजा खोलता
शक्तिता हूँ बाहर

सूनी है राह, अजीब है फँलाव,
सई अघेरा ।

कीली आँखों से देखते हैं विश्व
उदास तारे ।

हर बार सोच और हर बार अफसोस
हर बार किञ्च

के पारण चढे हुए दद का भागो कि दूर वहा दूर वहाँ

अधियारा पीपल देता है पहरा ।
 हवाओ की निसग लहरों में बापती
 कुत्तों की दूर-दूर अलग-अलग आवा ,
 टकराती रहती सियारा की ध्वनि से ।
 बापती है दूरिया, गूजते हैं फासले
 (बाहर कोई नहीं, कोई नहीं बाहर)

इतने में अधियारे सुने में कोई चीख गया है
 रात का पक्षी

कहता है—

“वह चला गया है,
 वह नहीं आयेगा, आयेगा ही नहीं
 अब तेरे द्वार पर ।
 वह निकल गया है गाव में शहर में ।
 उसको तू खोज अब
 उसका तू शोध कर ।
 वह तूरी पूणतम परम अभिव्यक्ति,
 उसका तू शिष्य है (यद्यपि पलातक)
 वह तूरी गुण है
 गुण है ”

[3]

समस्त न पाया कि चल रहा स्वप्न या
 जाग्रति शुरू है ।

दिमा जल रहा है,
 पीता-लोक-प्रसार में काल गल रहा है,
 आस पास फैली हुई जग-आकृतिया
 लगती हैं छपी हुई जड चित्रकृतियों सी
 अलग य दूर-दूर
 निर्जीव ! !

यह सिविल लाइन्स है । मैं अपने बमरे में
 यहा पडा हुआ हू ।
 आँवें खुली हुई हैं,
 पीटे गये बालक-मा मार घाया चेहरा
 उदास इबहरा,

54 कही भी घटम कविता नहीं हाती

स्लेट पट्टी पर खींची गयी तसवीर

भूत जैसी आकृति—

क्या वह मैं हूँ ?

मैं हूँ ?

रात के दो टै

दूर दूर जगल में सियारा का हो हा,

पास पास आती हुई धहराती गुजती

किसी रेलगाडी के पहियों की आवाज ॥

किसी अनपेक्षित

असम्भव घटना का भयावह स रेह,

अचेतन प्रतीक्षा,

कही कोई रेल एक्सीडेंट न हो जाय ।

चिन्ता के गणित एक

आसमानी स्लेट पट्टी पर चमकन

छिडकी से देखने ।

हाय ! हाय ! तात्स्ताय

कसे मुझे दीघ गये

सितारों के बीच ग्रीच

घूमते व रुकत

पृथ्वी को देखत ।

शायद तात्स्तॉय नमा

कोई वह जादमी

और है

मेरे किसी भीतरी धागे का जाघिरी छार वह

अनलिखे मेरे उपयास का

केन्द्रीय सवेदन

दबी हाय हाय नुमा,

शायद, तात्स्तॉय-नुमा ।

प्रोरोशन ?

निस्त-घ नगर के मध्य-रात्रि-अधेरे में गुनसान

किसी दूर ब्रेण्ड की दबी हुई त्रमागत तान धुन,
 मन्द-तार उच्च निम्न स्वर-स्वप्न,
 उदाम उदास ध्वनि-तरंगे है गम्भीर,
 दीध लहरिया ।।
 गैलरी म जाता हू, देखता हू रास्ता
 वह बोलतार पय जयवा
 मरी हुई खिची हुई कोई काली जिह्वा
 बिजली के चुत्तिमान् दिये या
 मरे हुये दातो का चमकदार नमूना ।।

बिन्दु दूर सडक के उस छोर
 शीत भरे धरनि तारो के अँधियाले तल म
 नील तेज उद्भास
 पास पास पास पास
 आ रहा इस ओर ।
 दबी हुई गम्भीर स्वर स्वप्न तरंगों,
 शत ध्वनि सगम समीत
 उदास तान धुन
 समीप आ रहा ।।

और, अब
 गैस लाइट पाता की बिन्दुए छिटकी,
 धीचा धीच उनने
 सावले जुलूस सा क्या कुछ दीखता ।।
 गस लाइट निलाई मे रगे हुए अपार्थिव चेहरे,
 ब्रेण्ड दल,
 उनने पीछे पाले-काले बलवान घोडो का जत्या
 दीखता,
 घना श्र डरावना अवचेतन ही
 जुलूस म चलता ।
 क्या शोभा-यात्रा
 किसी मृत्यु दल की ?

अजीब ।।

56 वही भी खत्म कविता नहीं होती

दोनो ओर, नीली गैस लाइट पांत
रही जल, रही जल ।
नीद में छोये हुए शहर की गहन अवचेतना में
हलचल, पाताली तल में
चमकदार सापो की उडनी हुई लगातार
लकीरो की वारदात ॥
सब सोये हुये है ।
लेकिन, मैं जाग रहा, देख रहा
रोमाचकारी वह जादुई वरामात ॥

विचित्र प्रोसेशन
गम्भीर कवीक भाच
कलायतू वाला काला जरीदार डैस पहने
चमकदार वैण्ड दल —
अस्थि रूप, यकृत स्वरूप उदर-आकृति
आतो के जालो से वाजे वे दमकते हैं भयकर
गम्भीर गीत स्वप्न तरंगों ।
उभारने रहते,
ध्वनियों के जावत भँडरात पथ पर ।
वण्ड के लोग के चेहर
मिलत है मेरे देखे हुआ से
लगता है उनमें कई प्रतिष्ठित पत्रकार
इसी नगर के ॥
उधे-बडे नाम अरे कैसे शामिल हो गये इस वैण्ड दल में ।
उनके पीछे चल रहा
सगीन नौको का चमकता जगल
चल रही पदचाप, ताल-बद्ध दीघ पात
टैंक दल, मोटार, ऑटिलरी, सनद,
धीरे धीरे बढ रहा जुलूस भयावना
सैनिक के पथराय चेहरे
चिडे हुए, झुलसे हुये, बिगडे हुये गहरे ।
शायद, मैंने उह पहले भी तो कही देखा था ।
शायद उम में मेरे कई परिचित ॥
उनके पीछे यह पया ॥

कवेलरी ॥

वाते काले घोडा पर खाकी मिलिट्री ड्रेस,
चेहरे का आधा भाग सिन्दूरी गेरुआ
आधा भाग कौलतारी भैरव,
आवदार ॥

काधे से कमर तक कारतूसी बेट्ट है तिरछा ।
कमर मे, चमडे के बवर म पिस्तौल,
रोप भरी एकाग्र दृष्टि मे धार है,
वनल, त्रिगेडियर, जनरल, माँशल
कइ और सेनापति सेनाध्यक्ष
चेहर व मेरे जाने बुझें से लगत,
उनवे विन समाचारपत्रो म छप थे,
उनवे लेख देखे थे,
यहा तक कि कविताएँ पढी थी
भइ बाह ।

उनम बइ प्रकाण्ड आलोचक, विचारक जगमगात कवि गण
मन्त्री भी, उद्योगपति और विद्वान
यहा तक कि शहर का हत्यारा कुख्यात
डोमा जी उस्ताद
बनता है बलबन
हाय, हाय ॥

यहा ये दीखते है भूत पिशाच काय ।
भीतर का राक्षसी स्वाय अब
साफ उभर आया है,
छिप हुए उद्देश्य
यहाँ निखर आयें है
यह शोभा यात्रा है किसी मत दल की ।

विचारा की फिरकी मिर मे धूमती है

इतने मे प्रोसशन म स कुछ मेरी ओर
आँखें उठी मरी ओर भर,
हृदय मे मानो कि सगीन नोकें ही घुस पढी बवर,
सडक पर उठ खडा हो गया कोइ शोर—

58 वही भी पदम कविता रही होती

“मारो गोली, दागो स्साले का एकदम
दुनिया की नजरो से हटकर
छिपे तरीके से
हम जा रह थे कि
आधी रात—अँधेरे में उसने
देख लिया हमको
व जान गया वह सब
मार डालो, उसने खत्म करो एकदम ’
रास्ते पर भाग दौड़ धका पेल ॥
गैलरी से भागा मैं पसीने से शरावार ॥

एकाएक टूट गया स्वप्न व छिन भिन हा मधे
सब चित्र
जागते म फिर से याद आने लगा वह स्वप्न
फिर स याद आन लगे ज धेरे में चेहरे
और मुझे प्रतीत हुआ भयानक
गहन मतात्माएँ इसी नगर की
हर रात जुलूस में चलती
परतु दिन में
वैटती ह मिल कर करती हुइ पडयत्र
विभिन्न दफनरो कायालय, केद्री म, घरा म ।

हाय हाय, मन उह देव लिया नगा
इसकी मुझे और सजा मिलेगी ।

[4]

जन्मात
चार का गजर वही खडका,
मेरा दिल धडका,
उत्स मटमला मन रुपी वटमीव
चल बिचल हुआ सहसा ।
अगात वाली वाली हायफन इशा की लीरें
बाहुर निबल पटो अन्तर घुस पडी भयभीत,
गव ओर बिग्यराव ।

म अपन बमरे म यहाँ लेटा हुआ हूँ ।
 काले-माले शहतीर छत के
 हृदय दमोचते ।
 यद्यपि आगत म नल जा मारता,
 जल पछारता ।
 किन्तु न शरीर म बल है
 अँधेरे म गल रहा दिल यह ।

एकाएक मुझे भान होता है जग का,
 अपवारी दुनिया का फलाव,
 फँसाव, घिराव, तनाव है सब ओर,
 पत्ते न पडके,
 सेना न घेर ली है सडक ।
 बुद्धि की मरी रम
 गिनती है समय की धन् धक् ।
 यह सब क्या है ?
 किसी जन कात्ति के दमन निमित्त यह
 माशुल-सा है ॥
 दम छोड रहे है भाग गलिया मे मरे पैर,
 रास लगी हुइ है,
 जमाने की जीभ निबल पडी है
 तोई भेरा पीछा कर रहा है लगातार ।
 भागता में दम छोड,
 घूम गया कइ मोड,
 चौराहा दूर से ही दीखता,
 चर्चा शायद कोइ सनिक पहरेदार
 नही होगा फिलहाल ।
 दीखता है सामने ही अघकार स्तूप सा
 भयकर बरगद—
 राभी उपेभितो, समस्त वचिता,
 गरीबा का वही घर, वही छत,
 उसने ही तन छोड-अँधेरे म सा रहे
 गूह हीन कई प्राण ।
 अँधेरे म डूब गये

60 वही भी घटम कविता नहीं होती

डालो म लटके जो मटमैल चिपड़े
किसी एक अति दीन
पागल के घन वे ।
हां, बहा रहता है सिर फिरा एक जन ।

किंतु आज इस रात बात अजीब है ।
वही, जो सिर फिरा पागल कतई था
आज एकाएक वह
जागरित बुद्धि है, प्रज्वलत् घी है ।
छोड़ सिर फिरा पर,
बहुत ऊँचे गले से,
गा रहा कोई पद कीइ गान
आत्मोन्बोधमय ॥
खूब भइ, खूब भइ,
जानता क्या वह भी कि
सैनिक प्रशासन है नगर म वाकइ ।
क्या उसकी बुद्धि भी जग गयी ।

(करण गसाल व हृदय के स्वर है
गद्यानुवाद यहा उनका दिया जा रहा)

ओ मेरे जादशवादी मन
ओ मेरे सिद्धान्तवादी मन,
अत्र तक क्या किया ?
जीवन क्या जिया ॥

उदरम्भरि बन अनात्म बन गय,
भूतो की शादी म कनात से तन गये
किसी व्यभिचारी के बन गये विस्तर,

दु घा के दागा को तमगो-सा पहना
अपन ही खयाला म दिन रात रहना
असम बुद्धि व अकेले म सहना
त्रि-दली निद्रिय बन गइ तलपर

अब तक क्या किया,
जीवन क्या जिया ॥

वताओ तो किस किसके लिये तुम दौड गये,
करुणा के दृश्यो से हाय ! मुह मोड गये,
धन गये पत्थर,

बहुत बहुत ज्यादा लिया,
दिया बहुत बहुत कम,
मर गया देश, अरे, जीवित रह गये तुम ॥

ता हित पिता को घर से निकाल दिया,
जन मन-करुणा सी माँ को हकाल दिया,
स्वार्थों के टेरियार कुत्तो को पाल लिया
भावना के कतव्य—त्याग दिये,
हृदय के मतव्य—मार डाले !
बुद्धि का भाल ही फोड दिया,
तकों के हाथ उखाड दिये,
जम गये, जाम हुए, फस गये,
अपने ही कीचड म घस गये ॥
विवेक बघार डाना स्वार्थों के तेल म
आदश खा गये ।

अब तक क्या किया,
जीवन क्या जिया,
ज्यादा लिया और दिया बहुत-बहुत कम
मर गया देश, अरे, जीवित रह गये तुम ”

मेरा सिर गरम है,
इसीलिये भरम है ।
सपनों म खेलता है आलोचन,
विचारा के चित्रो की अवलि म चिंतन ।
निजत्व माफ है बेचैन,
क्या करू ? जिसमे वहूँ,

६२ वही भी खत्म कविता नहीं होती

कहा जाऊ, दिल्ली या उज्जैन ?
वैदिक कृषि शुन शेष के
शाप भ्रष्ट पिता अजीगत समान ही
व्यक्तित्व अपना ही, अपने से खोया हुआ
वही उसे अकस्मात मिलता था रात में
पागल था दिन में
सिर फिरा विक्षिप्त मन्त्रिण्य ।

हाय, हाय !
उसने भी यह क्या गा दिया
यह उसने क्या नया ला दिया
प्रत्यक्ष,
मं खडा हा गया
किसी छाया मूर्ति सा समक्ष स्वयं के
होने लगी बहस और
लगने लगे परस्पर तमाचे ।
छि पागलपन है,
बया आलोचन है ।
गलियो में अधकार भयावह
माना मेरे कारण ही लग गया
माशल ला वह,
मानो मेरी निष्क्रिय सजा ने सकट बुनाया,
मानो मेरे कारण ही दुघट
हुई यह घटना ।
चक्र से चक्र लगा हुआ है
जितना ही तीव्र है द्वन्द्व क्रियाओं घटनाओं का
बाहरी दुनिया में,
उतनी ही तेजी से भीतरी दुनिया में,
चलता है द्वन्द्व कि
फिर से फिर लगे हुई है ।
आज उस पागल न मेरी चन भुला दी,
मेरी नींद गवा दी ।

मैं इन वरगण के पागल खडा हूँ ।

मेरा यह चेहरा ।
 घुलता है जाने किस अथाह गम्भीर, सावले जल से,
 झुके हुए गुमसुम टूट हुए घरा के
 तिमिर अतल से
 घुलता है मन यह ।
 रात्रि के श्यामल ओस से क्षालित
 कोई गुरु गम्भीर महान अस्तित्व
 महकता है लगातार
 मानो खडहर-प्रसारा म उद्यान
 गुलाब-चमेली के, रात्रि तिमिर म,
 महकते हा, महकते ही रहते हा हर पल ।
 किंतु व उद्यान कहा है,
 अधरे मे पता नहीं चलता ।
 मात्र सुग घ है सब ओर
 पर, उस महक लहर मे
 कोई छिपी वेदना, कोई गुप्त चिंता
 छटपटा रही छटपटा रही है

[5]

एकाएक मुझे भान ॥
 पीछे से किसी अजनबी ने
 कंधे पर हाथ रखा ।
 चौकता मैं भयानक
 एकाएक थरथर रंग गई सिर तब,
 नहीं नहीं । ऊपर से गिरकर
 कंधे पर बैठ गया बरगद पात तब,
 क्या वह सकेत, क्या वह इशारा ?
 क्या वह चिटठी है किसी की ?
 कौन-सा इंगित ?

भागता मैं दम छोड़,
 घूम गया कई मोड़ ॥
 बंदूक धाय धाय
 भयानो व ऊपर प्रकाश-सा छा रहा गरभा ।

64 कही भी कविता खत्म नहीं होती

भागता मैं दम छोड़,
घूम गया कई मोड़
घूम गयी पृथ्वी, घूम गया आकाश,
और फिर, किसी एक मुदे हुए घर की
पत्थर सीढ़ी दिख गई, उस पार
चुपचाप बैठ गया सिर पकड़ कर ॥
दिमाग म चक्कर,
चक्कर भवरें
भवरो के गाल गोल केन्द्र मे दीखा
स्वप्न सरीखा—

भूमि की सतहो के बहुत उहुत नीचे
अधियारी एका त
प्राकृत गुहा एक ।
विस्तृत खोह के सावले तल मे
तिमिर को भेद कर चमकते हैं पत्थर
मणि तेजस्वित्र रेडियो ऐक्टिव रत्न भी बिखर
झरता है जिन पर प्रबल प्रपात एक ।
प्राकृत जल वह आवेग भरा है
धुतिमान् मणिया की अमिनया पर से
फिसल फिसल कर बहती लहरें,
लहरा के तल म से फूटती हैं किरने
रत्ना की रगीन रूपा की आभा
फूट निकलती
खोह की बेडोल भीतें है शिलमिल ॥
पाता हूँ निज को खोह के भीतर,
विलुब्ध नेत्रो से देखता हूँ धुतिपां,
मणि तेजस्वित्र हाथा म लेकर
दीप्ति म बलमित रत्न वे नहीं हैं
अनुभव, धदना विवक निष्पप,
मेरे ही अपन यहा पडे हुए हैं
विचारा की रजितम अग्नि के मणि के
प्राण-जल प्रपात म धुलत है प्रतिपल
अनन म किरणा की गीली है हनचल

गोली है हलचल ।।

[6]

हाय, हाय । मैंने उह गुहा-वास दे दिया
लाक हित क्षेत्र से कर दिया वचित
जनोपयोग से वजित किया और
निपिद्ध कर दिया

उह मे डाल दिया ।।

खतरनाक थे,

रुच्चे भीख मागते) खर

न समय है,

तना ही तै है ।

न बदलता है,

सान चौराहा सावला फँला,

व म वीरान गछआ घण्टाघर,

र कत्यई बुजुग गुम्बद,

वली हवाआ म काल टहलता है ।

मे पीले हैं चार घडी चेहरे,

नेट के काटो की चार अलग गतिया,

अलग कोण,

चार अलग सवेत

स मे गतिमान चार अलग मतियाँ)

मा पर बिजली की गरदन लटकी,

से जलते हुए बल्बा के आस पास

र ख्याला के पखो के कीडे

हैं गोल गोल

र मचल कर ।

घर तले ही

व टुकडे बीट व तिनके ।

र विवर मे बठे हुए बूडे

भव पक्षी

तेज नजरा से देखते हैं सब ओर,

कि इराद

कि चमनते ।

66 वही भी खत्म कविता नहीं होती

मुनसान चोराहा,
बिखरी है गतिया, बिखरी है रफ्तार,
गश्त में घूमती है कोई दुष्ट इच्छा ।
भयानक सिपाही जाने किस थकी हुई झाक म
अधेरे में मुलगाता सिगरेट अचानक
तावे-से चेहरे की ऐंठ झलकती ।
पथरीली शलबट
दियासलाई की पल भर ली में
राप सी लगती ।
पर, उसके चहरे का रंग बदलता है हर बार,
मानो अनपेक्षित वही न कुछ हो
वह ताक रहा है —
समीन नौको पर टिका हुआ
सावला बहूक जत्या
गाल त्रिकोण एव बनाय खडा जा
चौक के बीच में ॥
एक ओर
टैका का दस्ता भी खड़े खड़े ऊपता
परतु अडा है ॥

भागता मैं दम छोड़,
घूम गया कई मोड़ ।
भागती है चप्पल, चटपट आवाज
चाँटो सी पड़ती ।
परा के नीचे की बीच उछलकर
चेहरे पर, छाती पर पड़ता है सहसा,
स्लानि की मितली ।
गलिया का गोल-गाल खोह-अधेरा
चेहरे पर आघा पर करता है हमला ।
अजीब उमस-बास
गलिया का रुघा हुआ उच्छवास
भागता हूँ दम छोड़
घूम गया कई मोड़ ।

घुघले से आकार कही-नही दौखत,
 भय के ? या घर के ? वह नहीं सकता
 आता है अकस्मात् बालतार रास्ता
 लम्बा व चौड़ा व स्पाह व ठण्डा,
 वेचन आखे ये देखती है सब आर ।
 कही कोई नहीं है,
 नहीं कही कोई भी ।
 श्याम आकाश म, सवेत भापा सी तारो की आखें
 चमचमा रही हैं ।
 मेरा दिल ढिंरी-सा टिमटिमा रहा है ।
 काई मुझे खीचता है रास्ते के बीच ही ।
 जादू से बघा हुआ चल पडा उस ओर ।
 सपाट सून मे ऊंची सी खडी जो
 तिलव की पापाण मूर्ति है नि सग
 स्तब्ध जडीमूत
 देखता हूँ उसको परन्तु ज्वा ही मैं पास पहुँचता
 पापाण-पीठिका हिलती सी लगती
 अरे, अरे, यह क्या ॥
 कण-कण काप रहे जिनमे से झरते
 नीले इलेक्ट्रान
 सब आर गिर रही चिनगियाँ नीली
 मूर्ति के तन से झरते हैं अगार ।
 मुस्कान पत्यगी हाठा पर काफी,
 भाषा मे बिजली के फूल सुलगते ।

इतने मे यह क्या ॥

भव्य तलाट की नासिका म से
 यह रहा खून न जान कब से
 लाल-लाल गरमीला रक्त टपकता
 (खून के घब्यो से भर अगरखा)
 मानो कि अतिशय चिन्ता के कारण
 मस्तक कोप ही फूट पडे सहसा
 मस्तक रदन हो यह उठा नासिका मे से ।
 हाप, हाप, पित पिन ओ,

चिन्ता मे इतने न उलझो
 हम अभी जिन्दा हैं जिन्दा,
 चिन्ता क्या है ॥
 मैं उस पाषाण मूर्ति के ठण्डे
 पंरो को छाती से बरबस टिपका
 रखासा-सा होता
 वह म तन गए करुणा के वाटे
 छाती पर, सिर पर बाहा पर मेरे
 गिरती है नीली
 बिजली की चिनगिया
 रान टपकता है हृदय मे मेरे
 आमा मे बहता-सा जगत
 गूना था तानाव ।
 इतने मे छाती मे भीतर टा-ठप
 गिर मे है पट पट ॥ बट रही हड्डी ॥
 प्रिय डबरलत ॥
 दिवने पताता सीया-ना रजा
 पन रहा बागूना
 छोले जा रहा मेरा यह विजल्य ही कोई
 भयातक त्रिा कोई जाग उगी मर भी अन्तर
 लठ कोई बडा भारी उठ गया हुआ है ।
 दन मे भागमान बंता व धीन धीन
 पडूत घटावा
 दिवनी की रजारा परो मे घूम लयी ।
 गान-ओ गतिना व अंधरे मे एक आर
 मे बह बंन लजा
 माबो विषात ।
 मे हरे ल बरे लकड़ों के लकड़ों लार मे
 रा। की लन ली जावाव
 हू। मे बंन लजा बंन लजा दूर लक
 बंन लजा मे लकड़ों के लकड़ों
 बंन लजा बंन लजा बंन लजा ।
 मे लकड़ों के लकड़ों के लकड़ों
 दि देलगा बंन लजा -

सामन मेरे
 सर्दी में बोरे को ओढ़ कर
 कोई एक अपन
 हाथ पर समेटे
 वाप रहा, हिल रहा — वह मर जायगा ।
 इतन में वह सिर खोलता है सहसा
 बाल बिखरते,
 दीखत हैं कान कि
 फिर मह खोलता है, वह कुछ
 बुदबुदा रहा है,
 किन्तु, मैं सुनता ही नहीं हूँ ।
 ध्यान से देखता हूँ — वह बाई परिचित
 जिसे खूब देखा था, निरखा था कई बार
 पर पाया नहीं था ।
 अरे हा, वह तो
 विचार उठत ही दब गये,
 सोचने का साहस सब चला गया है ।
 वह मुख — अरे, वह मुख, वे गांधी जी ॥
 इस तरह पगु ॥
 आश्चर्य ॥
 नहीं, नहीं वे जाच-पडतात
 रूप बदलकर करते हैं चुपचाप ।
 सुरागरसी सी कुछ ।

अधेरे की स्याही में डूबे हुए दब को सम्मुख पाकर
 मैं अति दीन हो जाता हूँ पास कि
 विजली का कटका
 कहता है — “भाग जा, हट जा
 हम हैं गुजर गये जमान के चेहरे
 आगे तू बढ जा ।”
 किन्तु मैं देखा बिया उस मुख को ।
 गम्भीर दृढ़ता की सलवटें बसी ही,
 शब्दों में गुरुता ।

70 कही भी खत्म कविता नहीं होती

वे कह रहे हैं—

“दुनिया न कचरे का ढेर कि जिस पर
दाना को चुगन चढ़ा हुआ कोई भी मुक्कुट

कोई भी मुरगा

यदि बाग दे उठे जोरदार

घन जाये मसीहा”

वे कह रहे हैं—

मिटटी के लोदे में किरगील कण कण

गुण हैं,

जनता के गुणों से ही सम्भव

भावी का उद्भव

गम्भीर शब्दों के और आग बढ़ गये,

जाने क्या कह गये ॥

मैं अति उद्दिग्ध ।

एकान्त उठ पड़ा आत्मा का विजय

मूर्ति की ठठरी ।

नाक पर चश्मा, हाथ में दण्ड,

कान्धे पर बोरा, बांह में बन्धना ।

आश्चर्य ॥ अन्धकार ! यह गिनु क्या ॥

मुगलरा उग चुति पुराने । यह तय —

‘ मर पाया सुनपाय गाथा हुआ यह था ।

संभावना दगबो, गुरा । न रचना । ’

चला जा रहा हूँ
धुसता ही जाता हूँ फासलो की छोहो की तहा म ।

सहसा रो उठा कंधे पर वह शिष्ट
अरे, अरे, वह स्वर अतिशय परिचित ॥
पहले भी कई बार कही तो भी सुना था,
उसमे तो स्फोटक क्षाभ का आयेगा,
गहरी है शिकायत
क्रोध भयकर ।

मुझे डर यदि कोई वह स्वर सुन ले
हम दोना फिर कही नही रह सकेंगे
में पुचकारता हूँ, बहुत दुलारता,
समझाने के लिए तय गाता हूँ गाने,
अधभूली सोरी ही हाठो से फटती ।
में चुप करने की जितनी भी करता हूँ कोशिश,
और जीर चीखता है क्रोध स लगातार ॥
गरम गरम अश्रु टपकत है मुझ पर ।

विन्दु, न जाने क्यों खुश बहुत हूँ ।
जिम्को न मैं इस जीवन म कर पाया,
वह कर रहा है ।
मैं शिशु-पीठ को थपथपा रहा हूँ,
आत्मा है गोली ।
पर जागे बढ रहे, मन आग जा रहा ।

डूबता हूँ मैं किसी भीतरी साव म—
हृदय के थाले म रक्त का तालाव,
रक्त मे डूबी है धूमिलमान मणिया,
रधिर से फूठ रही लाल-साल किरणों,
अनुभव रक्त मे डूबे हैं सकल्प,
और य सकल्प
चलते हैं साथ साथ ।
अधिपारी गलिया म चला जा रहा हूँ ।

72 कही भी पतम कविता नहीं होती

इतने में पाता हूँ अघेरे में सहसा
कंधे पर बुद्ध नहीं ॥

वह शिशु

चला गया जाने कहा,

और अब उसके ही स्थान पर

मात्र हैं सूरज मुखी फूल गुच्छे ।

उन स्वर्ण पुष्पा से प्रकाश विकीरण

कंधो पर, सिर पर, माला पर, तन पर

रास्ते पर, फैले हैं किरणों के कण-कण ।

भई बाह, यह पव ॥

इतने में गली एक आ गयी और मैं

दरवाजा गुला हुआ देखता ।

जीना है अघेरा ।

कही कोई द्विबगी सी टिमटिमा रही है ।

मैं बढ रहा हूँ

कंधा पर फूलों के लम्बे व गुच्छे

क्या हुए, कहा गये ?

कंधे क्या वजन से दुख रहे सहसा ।

ओ हो,

ब दूक आ गयी

बाह बा ॥

वजनदार रायफल

भई खूब ॥

गुला हुआ कमरा है सावली हवा है,

झाकते हैं खिडकियों में से दूर अघेरे में टके हुए सितारे

फली है बर्फीली सास सी वीरान,

तितर बितर सब फला है सामान ।

बीच में कोई जमीन पर पसरा,

फलाये बाह, दह पडा आखिर ।

मैं उस जन पर फँसाता टाच कि यह क्या—

पुन भरे बाल में उलझा है चेहरा,

भौंहों के बीच में गोली का सूराख

खून बा परदा गालों पर फँला,

हीठी पर सूखी है कत्थई धारा,
 फूटा है चश्मा नाक है सीधी,
 ओपफा ॥ एकांत प्रिय यह मेरा
 परिचित व्यक्ति है, वही, हा,
 सचाई थी सिफ एक अहसास
 वह कलाकार था
 गलियो के अधरे का, हृदय म, भार था
 पर, काय दामता से वचित व्यक्ति,
 चलाता था अपना असग अस्तित्व ।
 मुकुमार मानवीय हृदयो के अपने
 शुचितर विश्व के मात्र थे सपन ।
 स्वप्न व ज्ञान व जीवनानुभव जो—
 हलचल करता था रह रह दिल म
 बिसी को भी दे नही पाया था वह तो ।
 शूय के जल म डूब गया नीरव
 हो नही पाया उपयोग उसका ।
 विन्तु, अचानक शोक म आ कर क्या कर गुजरा कि
 स देहास्पद समझा गया जीर
 मारा गया वह बधिको के हाथा ।
 मुक्ति का इच्छुक तूपात अंतर
 मुक्ति के मत्ना के साथ निरंतर
 सब का था प्यारा ।
 अपने म द्युतिमान् ।
 उनका था वध हुआ,
 मर गया एक युग,
 मर गया एक जीवनादश ॥
 इतने मे मुझका ही चिडाता है काई ।
 सवाल है — मैं क्या करता था अब तक,
 भागता फिरता था सब ओर ।
 (फिजूल है इस वक्त बौसना खुद को)
 एवम जरूरी — दोस्तों को खोजू
 पाऊ मैं नए नए सहचर
 सकमक सत चित-वदना भास्वर ॥

74 बही भी पत्न कविता गही होती

जीने से उतरा,
एकाएक विद्रूप रूपा से घिर गया सहसा
पाठ मशीन सी,
भयानक आकार धेरते है मुझको,
में आततायी-सत्ता के सम्मुख ।

एकाएक हृन्मय धडक कर रूब गया, क्या हुआ ॥

भयानक सनसनी ।

पकड़कर कॉलर गला दबाया गया ।

चाटे से बनपटी टूटी कि अचानक

त्वचा उखड़ गयी गाल की पूरी ।

कान में भर गई

भयानक आहूद नाद की भनभन

बाधा में तेरी

रवितम तितलिया चिन्तगिया गीली ।

सामने ऊगते डूबते धूधले

कुहरिल बर्तुल

जिनका कि चन्डिल केन्द्र ही फैलता जाता

उस फलाक में दीखते मुझको—

धस रहे गिर रहे बड़े बड़े टावर

घुघराला धँजा गेम्मा ज्वाला ।

हृदय में भगदड—

सम्मुख दीपा

उजाड़ बजर टीले पर सहसा

रो उठा कोई रो रहा कोई

भागता कोई सहायता देने ।

अनन्तत्वों का पुनप्रवध और पुनव्यवस्था

पुनगठन-सा होता जा रहा ।

दृश्य ही बदला चित्र बदल गया

जवरन् ले जाया गया मैं गहर

अधिघारे कमरे के स्याह सिफर में ।

टूटे स स्टूत में बिठाया गया हूँ ।

शीश की हड्डी जा रही तोड़ी ।

तोहे की कील पर पडे हथौडे

पड रहे लगातार ।

शीश का माटा अस्थि-कवच ही निकाल डाला ।

देखा जा रहा —

मस्तक-मंत्र मे कौन विचारो की कौन सी ऊर्जा,

कौन सी शिरा मे कौन सी धक् धक्,

कौन सी रग मे कौन सी फुरफुरी,

वहा है पश्यत कमरा जिसमे

तथ्या के जीवन दृश्य उतरते,

वहा-वहा सच्चे सपनों के आशय

कहा कहा क्षोभव स्फोटक सामान ।

भीतर वही पर गडे हुए गहर

तलघर अंदर

छिपे हुए प्रिटिंग प्रेम को खोजो ।

जहा कि चुपचाप धयातो के परचे

छपते रहते हैं, बाटे जाते ।

इस सस्था के सेक्रेट्री का धोज निकालो,

शायद, उसका ही नाम हो आस्था,

वहा है सरगना इस टुकडी का

वहा है आत्मा ?

(जीर, मैं सुाता हू बिडी हुई ऊची

चिज्ञतायी आवाज)

स्त्रीनिग करो मिस्टर गुप्ता,

क्रास एक्जामिन हिम थारोली ।।

चाबुक चमकार

पीठ पर यद्यपि

उखडे चम की कल्पई रक्षितम रखाएँ उभरी

पर, यह आत्मा कुशल बहुत है,

यह मे रोग रही सवेदना की गरमीली कडुई धारा को गहरी

क्षणन धरधर तारा का उसके,

समेट कर यह सब

वेदना विस्तार करने इकट्ठा

मेरा मन यह

जबरन उनकी छोटी सी कड़वी
 गठान बाँधता सख्त व मजबूत
 मानो कि पत्थर ।
 जोर लगा कर,
 उसी गठान को हथेलियों से
 करता है चूर चूर,
 धूल में बिखरा देता है उसको ।
 मन यह हटता है दह की हद से
 जाता है नहीं पर जलज जगत् म ।
 विचित्र क्षण है,
 सिर्फ है जादू,
 मात्र में विजली
 यद्यपि खोह में सूटे वघा हू
 दत्य है आस-पास
 फिर भी बहुत दूर मौला के पार वहाँ
 गिरता हूँ चुपचाप पत्र के रूप में
 किसी एक जेब में
 वह जेब
 किसी एक फटे हुए मन की ।

समस्वर, समताल,
 सहानुभूति की सनसनी कोमल ॥
 हम कहा नहीं है
 सभी जगह हम ।
 निजता हमारी ?
 भीतर भीतर विजली के जीवित
 तारा के जाले,
 ज्वलत तारों की भीषण गुत्थी,
 बाहर-बाहर धूल-सी भूरी
 जमीन की पपड़ी
 जग्नि को लेकर मस्तक हिमवत,
 उग्र प्रभजन लेकर, उर यह
 विलकुल निश्चल ।
 भीषण शक्ति को धारण करके

आत्मा का पोशाक दीन व मैला ।
विचित्र रूपो को धारण कर के
चलता है जीवन, लक्ष्यो के पथ पर ।

[7]

रिहा ॥

छोड़ दिया गया मैं,
बई छामा मुख अब वरते हैं पीछा,
छाया कृतिया न छोड़ती ह मुझको,
जहाँ जहा गया वहा
भौहा के नीचे व रहस्यमय छेद
मारते हैं सगीत —

दण्डि की पत्थरी चमक है पनी ।
मुझे अब खोजने होंगे साथी —
बाले गुलाब व स्याह सिवती,
स्वाम चमेली,
सँवलाये कमल जो घोहा के जल म
भूमि के भीतर पाताल-तल मे
धिले हुए अब स भेजते है सनेत
मुझाव स-देश भेजते रहते ॥
इतने म सहसा दूर क्षितिज पर
दीखते हैं मुझको
बिजली की नगी लताओ स भर रहे
सफे नीले मातिया चम्पई फूल गुलाबी
जठन हैं वही पर हाथ अकस्मात्
अग्नि के फूला को समेटने लगते ।
मैं ज-ह देखने लगता हूँ एकटक,
अचानक विचित्र स्फूर्ति से मैं भी
जमीन पर पड़े हुए चमकीले पत्थर
लगातार चुनकर
बिजली के फूल बनान की काशिश
करता हू । रगिम विकीरण—
मेरे भी प्रस्तर करन हैं प्रतिलय ।

रेडियो ऐक्टिव रत्न हैं वे भी ।
 बिजली के फूलों की भाँति ही
 यत्न हैं वे भी,
 किन्तु, अस-तोप मुझको है गहरा,
 शब्दाभिव्यक्ति अभाव का सबेरा ।
 काव्य-चमत्कार उतना ही रगीन
 परन्तु ठंडा ।
 मेरे भी फूल है तेजस्विन्य, पर
 अतिशय शीतल ।
 मुझको तो वैचन बिजली की नीली
 ज्वलत चाँही मे वाह्य का उलझा
 करनी है उतनी ही प्रदीप्त लीला
 आकाश भर म साथ-साथ उसके घूमना है मुझको
 मेरे पास न रग है बिजली का गौर कि
 भीमाकार हूँ मेघ में काला
 परन्तु, मुझको है गम्भीर आवेश
 अथाह प्रेरणा स्रोत का समय ।
 अरे, इन रगीन पत्थर फूलों से मेरा
 काम नहीं चलेगा ॥
 क्या कहूँ,
 मस्तक-कुण्ड मे जलती
 सत चित-चेदना सचाई व गलती—
 मस्तक शिराओं मे तनाव दिन रात ।

अब अभिव्यक्ति के सारे घतरे
 उठाने ही हूँगे ।
 तोड़ने हूँगे ही मठ और गढ़ सब ।
 पहुँचना होगा दुग्ध पहाड़ों के उस पार
 तब कही देखने मिलेंगी बाँह
 जिसम कि प्रतिपन्न कौपता रहता
 अरण्य कमल एक
 ते जाने उसरो धँसना ही होगा
 शील के हिम शीत मुनीन जल म
 चाँद उग जाया है

गलिया की आकाशी लम्बी सी चीर में
 तिरछी है किरनो की मार
 उस नीम पर
 जिसके कि नीचे
 मिट्टी के गोल चबूतरे पर, नीली
 चादनी में कोई दिया सुनहला
 जलता है मानो कि स्वप्न ही साक्षात्
 अदृश्य साकार ।
 मकानों के बड़े बड़े खंडहर जिनके कि सूने
 मटियाँ भागो में खिलती ही रहती
 महकती रातरानी फूल भरी जवानी में लज्जित
 तारों की टपकती अच्छी न लगती ।

भागता मैं दम छोड़,
 धूम गया कई मोड़,
 ध्वस्त दीवाला के उस पार कहीं पर
 वृत्त गरम है
 दिमाग में जान है, दिलो में दम है
 सत्य से सत्ता के युद्ध को रंग है,
 पर, कमजारियाँ सब मेरे राग है
 पाता हूँ सहसा —
 अंधेरे की सुरंग गलिया में चुपचाप
 चलते हैं लोग-बाग
 दण्ड पद गम्भीर,
 बालक युवागण
 मन्द गति नीरव
 किसी निज भीतरी बात में व्यस्त हैं,
 कोई आग जल रही तो भी अतट स्थ ।

विचित्र अनुभव !!

जितना मैं लोगो की पाँता को पार कर
 बढ़ता हूँ आगे,
 उतना ही पीछे मैं रहता हूँ अनेना,
 परनालु-पद हूँ ।

पर, एक रेला और
 पीछे से चला और
 अब मेरे साथ है ।
 आश्चर्य ॥ अद्भुत ॥
 लोगो की मुट्ठियाँ बँधी हैं ।
 अँगुली मर्घि से फूट रही किरन
 लाल-लाल
 यह क्या ॥
 मेरे ही विक्षोभ मणियो को लिए वे
 मेरे ही विवेक रत्नो को ले कर,
 बढ रहे लाग अँधेरे मे सोत्माह ।
 किंतु मैं अकेला
 बौद्धिक जुगाली मे अपने से दुकेला ।

मत्रियो के अंधेरे मे मैं भाग रहा हू
 इतने म चुपचाप कोई एक
 दे जाता पर्चा,
 कोई गुप्त शक्ति
 हृदय म करने-सी लगती है चर्चा ॥
 मैं बहुत ध्यान से पढता हू उसको ।
 आश्चर्य ।
 उसम तो मेरे ही गुप्त विचार व
 दबी हुई सवेदनाएँ व अनुभव
 पीडाएँ जगमगा रही हैं ।
 यह सब क्या है ॥
 आसमान शक्तिता है लकीरा के बीच बीच
 वाक्या की पाँतो मे आकाशगगा सी फैली
 शब्दा के ध्यूहा म ताराएँ चमकी
 तारण-दलो म भी खिलता है आँगन
 जिसम कि चम्पा के फूल चमकने
 शब्दबोशो के बाना म गहरे तुलसी के श्यामल खिलते हैं
 चेहरे ॥
 रमकता है आशय मनाज मुधा म
 पारिजात-गुण महका ।

पर्वा पडते हुए उडता हूँ हवा मे
 चक्रवात गतियो मे घूमता हूँ नभ पर
 जमीन पर एक साथ
 सबत्र सचेत उपस्थित ।
 प्रत्येक स्थान पर लगा हूँ मैं काम मे,
 प्रत्येक चौराहे, दुराहे व राहो के मोड़ पर
 सडक पर खडा हूँ,
 मानता हूँ, मनाता हूँ, मनवाता अडा हूँ ॥

और तब दिक्काल दूरियाँ
 अपने ही देश के नक्शे-सी टगी हुई
 रगी हुई लगती ॥
 स्वप्नो की कोमल किरन कि मानो
 घनीभूत सघनित श्रुतिमान्
 शिलाओ म परिणत
 ये सन दडीभूत कम शिलाए है
 जिनसे कि स्वप्ना की मूर्ति बनेगी
 सस्मित सुखकर
 जिसकी कि किरनें
 ब्रह्माण्ड भर मे नापेंगी सब कुछ ।
 सचमुच, मुझको तो जिदगी-सरहद
 सूर्यो के प्रागण पार भी जाती-सी दीखती ॥
 मैं परिणत हूँ,
 कविता म कहने की आदत नही, पर कह दू
 वर्तमान समाज म चल नही सक्ता ।
 पूजा से जुडा हुआ हृदय बदल नही सक्ता,
 स्वातन्त्र्य ध्यकित का वाणी
 छल नही सक्ता मुक्ति के मन को,
 जन को ।

[8]

एकाएक हृदय धडक कर रूत गया, नया हुआ ॥
 नगर से भयानक धुआँ उठ रहा है,
 वहाँ जाग लग गयी वहाँ मोली चल गयी ।
 सडको पर भरा हुआ फैला है मुनसान,

हवाओ म अदृश्य ज्वाला की गरमी
 गरमी का आवेग ।
 साथ साथ धूमते है, साथ साथ रहते है,
 साथ साथ सीते हैं, खाते हैं, पीते है
 जन मन उद्देश्य ! ।
 पयरीले चेहरो के खाकी ये कसे ड्रेस
 धूमत हैं या नवत,
 वे पहचाने मे लगते हैं वाकइ
 नही आग लग गयी, कही गोली चल गयी ॥

सब चुप, साहित्यिक चुप और कविजन निर्वाक
 चिन्तक, शिल्पकार, नतक चुप हं
 उनके खयाल से यह सब गप है
 मान किबदती ।
 रक्तपायी वर्ग से नाभिनाल उद्ध ये सब लोग
 नपुंसक भाग शिरा जाला म उलने ।
 प्रश्न की उपली सी पहचान
 राह से अनजान
 वाक रदती ।
 चढ़ गया उर पर कही कोई निदयी
 कही आग लग गयी, कही गोली चल गयी ।

भय्याकार भवनो के विपरा म छिप गये
 समाचारपत्रा के पतियो के मुग्न स्थूल ।
 गढे जात सवाद,
 गढी जाती सभीशा,
 गढ़ी जाती टिप्पणी जन मन-उर शूर ।
 बौद्धिक बग है श्रीत-गस,
 विरामे के विचारा का उल्भास ।
 बडे-बडे चेहरो पर स्याहियाँ पुत गयी ।
 नपुंसक थडा
 सडक के नीचे की गटर म छिप गयी,
 कही आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी ।

धुएँ के जहरीले मेधो के नीचे ही हर वार
 द्रुत निज विश्लेष गतिया,
 एक स्प्लिट सेक्वेण्ड में शत साक्षात्कार ।
 टूटते हैं घोखो से भरे हुए सपन ।
 रक्त में वहती हैं शान की किरनें
 विश्व की भूर्ति में आत्मा ही ढल गयी,
 वही आग लग गयी, कही गोली चल गयी ।

राह के पत्थर-ढोका के अंदर
 पहाड़ के क्षरने
 तड़पने लग गये ।
 मिट्टी के लादे के भीतर
 भक्ति की अग्नि का उद्रेक
 भड़कने लग गया ।
 धूल के कण में
 अनहद नाद का वम्पन
 खतरनाक ॥
 मकानों के छत से
 गाइर कूद पड़े मम से
 घूम उठे खम्भे
 भयानक वेग से चल पड़े हवा में ।
 दादा का सोटा भी करता है दाँव-पेच
 नाचता है हवा में
 गगन में नाच रही बक्का की लाठी ।
 यहाँ तक कि बच्चे की पेंसें भी उड़ती,
 तंबी से लहराती घूमती है हवा में
 सलेट-मट्टी ।
 एक-एक वस्तु या एक-एक प्राणाग्नि वम है,
 ये परमास्त्र है, प्रक्षोपास्त्र है, यम हैं ।
 शू-भाकाश में से होते हुए वे
 अरे, अरि पर ही टूट पड़े अनिवार ।
 यह क्या गही है, यह सब सच है, हा भई ॥
 गही आग लग गयी, कही गोली चल गयी ॥

मानो कि ज्वाला पखुरियो से धिरे हुए वे सब
अग्नि के शत दल कोष म बैठे ॥
द्रुत वेग बहती हैं शक्तिया विश्वयी ।
बही जाग राग गयी, कही गोली चल गयी ॥

एकाएक फिर स्वप्न भग
बिछर गये चित्र कि मैं फिर अबेला ।
मस्तिष्क हृदय मे छेद पड गय है ।
पर, उन दुपते हुए रत्ना म गहरा
प्रदीप्त ज्योति का रस बह गया है ।
मैं उन सपना का पोजता हू आशय,
अर्थों की वेदना धिरती है मा म ।
अनीब क्षमला ।
धूमता है मन उन अर्थों के घावा के आस पास
आत्मा म चमकीली प्यास भर गयी है ।
जग भर दीखती हैं सुनहली तसवीरे मुझको
मानो कि बल रात किसी अनपेक्षित क्षण मे ही सहसा
प्रेम कर लिया हो
जीवा भर के लिए ॥
मानो कि उस क्षण
अतिशय मनु कि-हा बाँहा ने आ कर
कस लिया था इस भाँति कि मुझको
उम स्वप्न म्पश की, चुम्बन की याद आ रही है
याद आ रही है ॥
अज्ञात प्रणयिनी कौन थी, कौन थी ?

कमर म सुबह की धूप आ गयी है,
गैलरी मे फैला है सुनहला रवि छोर
क्या कोई प्रेमिका सचमुच मिलेगी ?
हाय ! यह वेदना स्नेह की गहरी
जाग गयी क्योकर ?

सब ओर विद्युत्तरगीय हलचल
चुम्बकीय आनयण ।

86 वही भी खत्म कविता नहीं होती

प्रत्येक वस्तु का निज निज आलोक,
मानो कि अलग अलग फूला के रंगी
अलग अलग वातावरण है वेमाप,
प्रत्येक अथ वी छाया म अथ अर्थ
चलकता साफ साफ !
डेस्क पर रखे हुए महान ग्रन्थों के लखक
मेरी इन मानसिक क्रियाओं के बन गये प्रक्षक,
मेरे इस कमरे म आकाश उतरा,
मन यह अन्तरिक्ष वायु म सिहरा ।

उठता हूँ, जाता हूँ, गैलरी म घडा हूँ ।
एकाएक वह व्यक्ति
आँखों के सामने
गलियों में सड़कों पर, लोगों की भीड़ में
चला जा रहा है ।
वही जन जिसे मैंने देखा था गुहा में ।
घडकता है दिल
पुकारने को खुलता है मुह
कि अकस्मात् —
वह दिखा, वह दिखा
वह फिर खो गया कि किसी जा यथ में
उठी बाह यह उठी हुई रह गयी ??

अनखोजी निज समझि का वह परम उत्कप,
परम अभि-यक्ति
मैं उसका शिष्य हूँ -
वह मेरी गुरु है
गुरु है ! !
वह मेरे पास कभी बैठा ही नहीं था
वह मेरे पास कभी आया ही नहीं था,
तिलिस्मी खोह म देखा था एक बार,
आखिरी बार ही ।
पर वह जगत ही गलिया म घूमता है प्रतिपत्न
वह फटहाल रूप ।

तडित्तरगीय वही गतिमयता,
 अत्यंत उद्विग्न ज्ञान तनाव वह
 सक्मक प्रेम की वह अतिशयता
 वही फटेहाल रूप ॥
 परम अभिव्यक्ति
 लगातार घूमती है जग मे
 पता नहीं जान कहा, जाने कहा
 यह है ।
 इसीलिए मैं हर गली मे
 और हर सड़क पर
 ज्ञान ज्ञाक देखता हूँ हर एक चेहरा,
 प्रत्येक गतिविधि,
 प्रत्येक चरित्र,
 व हर एक आत्मा का इतिहास
 हर एक देश व राजनतिक परिस्थिति
 प्रत्येक मानवीय स्वानुभूत जादश
 निवक प्रक्रिया, नि्यागत परिणति ॥
 षोजता हूँ पठार पहाड समुंदर
 जहा मिल सके मुझे
 मेरी वह खोयी हुई
 परम अभिव्यक्ति अनिवार
 आत्म-सम्भवा ।



प्रमथ्यु गाथा

धर्मवीर भारती

जन्म सन 1926, इलाहाबाद ।

कृतिया

कविता सग्रह कनुप्रिया (1959), सात गीत वप (1959),
ठडा लोहा (1969)

काव्य नाटक अधा युग

उप यास गुनाहा का देवता, सूरज का सातवा घोडा

कहानी सग्रह बन्द गली का जाखिरी मकान

आलोचना मानव मूल्य और साहित्य तथा अन्य कई निबंध सग्रह ।

सम्प्रति 'धमयुग साप्ताहिक के संपादक

प्रस्तुत कविता प्रमथ्यु गाथा (1959) कवि के कविता सग्रह 'सात गीत वप में संकलित है ।

[ये जो जन है, साधारण जन ह
उन में से एक-एक के अन्दर
मूर्छित प्रमथ्यु कही बदी है !
अवसर जिसे मिला नहीं साहस कर पाने का
कोई तो ऐसा दिन होगा
जब मेरे य पीडा सिक्न स्वर
उस के मन को बेध मूर्छित प्रमथ्यु को जगायेंगे ।]

प्रमथ्यु गाथा

प्रमथ्यु

जकडे हुए हैं ये मेरे हाथ
लौह श्रृंखलाभा से
जडी हुई जो कीली रो
इस आदिम चट्टान से,

टूटी हुई है पसलिया
और मन का घाव
अदर का सारा दद
नगा अनावृत है ।

छुपितर की आना से
नरभक्षी बूढा गूढ
मेरे कंधों पर बठ
दिल भर नोचा करता है मेरा हृदयपिण्ड
जोर में बेवस हू
बंदी हू ।

मैने, क्योकि मैं ही
प्रथम बार साहस किया
छुपितर के महलों से अग्नि छीन लान का

92 वही भी अरुम वविता नही होती

अधी घाटी म भयभीत भेड के समाग
पृथ्वी यह
अधियारे मे थी सहमी पडी

मैंने, हा मैंने ही प्रथम बार साहस किया

द्युपितर

साहस नही था,
मैंने जो नवशा बनाया था
मानव अस्तित्व का—
उसम थी दासता,
विनय थी, वायरता थी
भय था, आतंक था
अधेरा था
यह जो
इस व्यक्ति ने
अधेरे को देखर चुनीती
दुस्साहस किया
यह मेरी सत्ता का प्रथम अनादर था

मैंने इसे दण्ड दिया

वज्रित थी ज्योति

और गहिल था स्वातन्त्र्य

साहस उत्पन्न ही नही था किया मैंने तब

इसकी यह लायी हुई आग

जगर साहस बन कर फल गयी होती मनुष्या म

फिर वे उठाते सिर

फिर फिर वे उठाते सिर

जन-साधारण

मूरख नही है जी ।

हम क्या उठाते सिर

हम क्या ये सब साहम करते व्यथ

अग्नि जिस लाना था ले आया ।

अग्नि नहीं थी जब
 तब हम ने नहीं कहा
 कि जाओ अग्नि लाओ तुम
 और अग्नि जब आयी
 हमन नहीं कहा कि अग्नि नहीं लगे हम

यह जो हम अब भी खडे ह
 प्रमथ्यु के आस पास ---
 इसलिए नहीं कि हम कुछ
 उसके अनुगामी हैं,

हम ह तमाशबीन
 देख रहे हैं कसे जकडा हुआ है शिलाआ से
 कस वह कधे पर बठा हुआ गिद्ध
 नोच नोच खाता है उसका हृदयपिण्ड
 और रात ढलने ढलते कैसे
 सारा धाव फिर से पुर जाता है
 ताकि गिद्ध फिर नोचे

यह है करिषमा और
 हम सब करिषमो के प्यासे हैं ।
 चाहता अगर तो हम म से हर एक व्यक्ति
 अपने ही साहस से प्रमथ्यु हो सकता था
 लेकिन हम डरते थे,
 ज्योति चाहते थे
 पर दण्ड भोगने से हम डरते थे ।

हम सब करिषमा के प्यासे हैं
 कोई भी करिषमा कर दिखलाय
 हम खुद क्यों लें कोई भी निणय
 हम खुद क्या भोगें कोई भी दण्ड ?

अग्नि

वे थे सब स्वार्थी

94 वही भी घटम वविता रही होती

विलासी थे, वायर थे
जिाने महलो मे मे वदी थी

मुक्त विया मुक्तो प्रमथ्यु ने

उसने कहा
तुम हो ज्योति
तुम्ही जीवन हो

माथे से लगाकर प्रमथ्यु ने
फेंक दिया फिर मुझका इन कायरों के बीच

मुझ से ये
सुवह शाम चूल्हा मुलगायेंगे
शय्या गरमायेंगे
सोना गलायेंगे
और जरा सा मौका पात ही
अपने पडोसी का सारा घर फूकेंगे !
मुझको क्या मुक्त विया
मुझको क्यों माथे से लगाकर
फिर फेंक दिया इन कायरों के बीच !

प्रमथ्यु

मुझको मालूम नहीं था कुछ भी
डूबा था सब कुछ अधियारे मे
अधियारे मे मे भी डूबा था

अग्नि किसे कहते हैं
इसका आभास भी नहीं था मुझे
गिद्ध यह बठा है जो मेरे कंधों पर
ऊपर उडते उडते पहली बार इसने देखी थी क्षलक अग्नि की ।

साहस था भरा
किंतु धूपितर के महला की गुप्त राह

इसने बताया मुझे—

गुह्यजन है !

सच है यह

मेरे कंधा पर बैठ

नोच-नोच खाता है यह मेरा हृदयपिण्ड

फिर भी मेरा मस्तक नत है

हाठा को भीचे नि शब्द सह रहा हूँ मैं

क्योंकि यह ब्रूण गद्य गुणी है, ज्ञाता है ।

मस्तक नत है मेरा

इसलिए नहीं कि हूँ पराजित मैं

इसलिए नहीं कि जिनके हित अग्नि जीत लाया हूँ

उभय नहीं है साहस या सवेदना

जिसमें नहीं है साहस प्रमथ्य वनन का

उसको बिना पीडा के मिल जान वाली अग्नि

माजती नहीं है

और पशु ही बनाती है !

अग्नि मिलन पर भी

वे सब पशु के पशु है

जिनको नृशस स्वाद आता है

मेरी इस भयानक पीडा से !

देता है जो बूढ़ा गिद्ध

मेरे ही कंधे पर बठकर

गूढ़

बटु मत हो

सुनो बत्स !

शोभा नहीं देती है बटुता प्रमथ्य को

सच है यह

मैं ही प्रेरित किया था तुम्हें देव अग्नि लाने को

क्याकि धरा पर नीचे गहरा अंधिमारा था

जीवन भर मैंने आवाश में

निरयत चक्कर काटे

96 कही भी खत्म कविता नहीं होती

ऊँचे पर्वत, ऊबड़ खाबड़ घाटी वाली
घरती पर कैसे उतरता मैं ?

नीचे अधियारा था

अब मैं बूढ़ा हूँ

और मेरे थके हैं पख

कब तक आकाश में विहार करूँ

सिवा तुम्हारे इन सबल पुष्ट बंधो के और कहाँ बैठूँ मैं ?

कटु मत हो !

आहत है मेरा अहम

मेरे थे पख और मैंने देखी थी अग्नि

मैं भी ला सकता था

किंतु एक थोड़े से साहस के बगर

मैं अग्नि जीत लाने से बचित रहा

तुम हो मेरे प्रियजन

मेरा यह आहत अहम

अगर तुम्हारे मासपिण्ड से बुझाता है

अपनी भूख

तो तुम क्या इतना भी नहीं सहोगे मेरे लिए

सुनो बत्स !

मुझको यदि मानते हो गुरुजन

तो बात सुनो

सहते चलो सब कुछ

माथे पर शिकन नहीं लाना कभी

मन में घृणा नहीं लाना कभी

घृणा वह जहर है

जो नसों में प्रवाहित

रक्त को दूषित करता है

और वह रक्त

वह तुम्हारा रक्त

अततोमत्या मुपकाही ता पीना है !

प्रमथ्यु

पियो !

जी भरकर पियो,

गुरुजन हो

मेरी शिराआ म रक्त वह रहा है तुम्हारा ही

जी भर पियो !

कटु मैं नहीं हूँ

घुणा किससे कहूँगा मैं

ये जो जन है, साधारण जन है

उनमें से एक एक के अन्दर

मूर्च्छित प्रमथ्यु कही बन्दी है !

अवसर जिसे मिला नहीं साहस कर पाने का

कोई तो ऐसा दिन होगा

जब मेरे ये पीडा सिक्त स्वर

उसके मन को वेघ मूर्च्छित प्रमथ्यु को जगावेंगे !

उस दिन

हाँ, उस दिन

अकेला मैं रहूँगा नहीं

सबके हृदया म मैं जागूँगा

मैं—प्रमथ्यु

कटु मैं नहीं हूँ

घुणा किससे कहूँगा मैं ?

आत्म हत्या के विरुद्ध

रघुवीर सहाय

जन्म सन् 1929 लखनऊ।

कृतिया

कविता-संग्रह 'सीढिया पर घूप मे' (1960), दूसरा सप्तक (1951) दोनों 'अज्ञेय' द्वारा संपादित, 'आत्म हत्या के विरुद्ध' (1967) हँसो हँसो जल्दी हँसो (1975)।

कहानी संग्रह 'रास्ता इधर से है' (1972) कुछ कहानियाँ 'सीढिया पर घूप मे' में सम्मिलित हैं।

सम्प्रति 'दिनमान' समाचार साप्ताहिक का संपादन।

प्रस्तुत कविता 'आत्महत्या के विरुद्ध' (1967) कवि के श्मी शीषक के कविता-संग्रह में सम्मिलित है।

[रुख होगा बुख होगा अगर मैं बोलूंगा
न टूटे न टूटे तिलिस्म मत्ता वा मेरे अन्दर नायर टूटेगा टूट
मेरे मन टूट एक बार सही तरह
अच्छी तरह टट मत भूठमूठ रुठ
मत हूय सिर्फ टूट]

आत्म हत्या के विरुद्ध

समय आ गया है जब तब कहता है सम्पादकीय
हर बार दस परस पहले में कह चुका होता हूँ कि समय आ गया है

एक गरीबी, ऊबो, पीली, रोशनी, बीजी,
रोशनी, धुंध, जाला, यमन, हरमुनियम अदृश्य
डब्बाबंद शोर
गाती गला भोच आकाशवाणी
अंत में टडग

अकादमी की महापरिषद की अन त बठक
अदवदा कर निश्चित कर देती है जब कुछ और नहीं पाती
ता ऊत्र का स्तर
एक मीली जंगली का निशान डाल दस्तखत कर
तले हुए नाशते की तेलीस मेज पर

नगर निगम न त्योहार जा मनाया तो जनसभा की
माथर मटकता मंत्री मुसद्दीलाल महन्त मच पर चढ़ा
छाती पर जनता की
बसती रग जानते थ न पसारी न मुसद्दीनान
दानो ने राय दी
बघे से बघा भिडा ले चलो
पातकी

बल से ज्यादा लोग पास मेंडरात है
 ज़रूरत से ज्यादा आसपास ज़रूरत से ज्यादा नीरोग
 शय से कि ब्यय है जो मैं कर रहा हूँ
 क्याकि जो बह रहा हूँ उसमे अय है ।

बल मैंने उसे देखा लाय चेहरो म एक वह चेहरा
 कुदता हुआ और उलझा हुआ वह उदास कितना बोदा
 यही था नाटक का मुख्यपात्र
 पर उसकी ठस पीठ पर मैं हाथ रख न सका
 वह बहुत चिक्नी थी ।

लौट आओ फिर उसी खात पीने स्वग म
 पिटे हुए नेता, पिटे अनुचर बुलाते ह
 मार फडफडाते है पख साल दो साल गले रँधी घँटिया
 पढी लिखी गरदने बजाती है फिर उड जाता है विचार
 हम रह जाते है अधेड
 कुछ होगा कुछ होगा अगर मै बोलूंगा
 न टूटे न टूटे तिलिस्म सत्ता का मेरे अन्दर एक कायर टूटेगा टूट
 मेरे मन टूट एक बार सही तरह
 अच्छी तरह टूट मत झूठमूठ ऊब मत रूठ
 मत डूब सिफ टूट जैसे कि परसो के बाद
 वह आया बँठ गया आदतन एक बहस छेड़कर
 गया एकाएक बाहर ज़ारो से एक नकली दरवाजा
 भेड कर
 दद दद मैंने कहा क्या अज नहीं होगा
 हर दिन मनुष्य से एक दर्जा नीच रहन का दद
 गरजा मुस्टडा विचारक — समय आ गया है
 कि रामलाल कुचला हुआ पाँव जो घसोट कर
 चसता है अपहीन हो जाय ।

छुओ
 मेरे बच्चे का मुह
 पाल नहीं जसा विज्ञापन म छपा
 बाठ नहीं

है

कुछ पता चना जान का शोर डर कोई लगा
नहीं—वाला मेरा भाई मुझे पाँव तले
रोदकर, अग्नेजी ।

कितना आसान है पागल हो जाना
ओर भी जब इस पर इनाम मिलता है
नकली दरवाजे पीटने है जवान हाथा का
काम सर को जाराम मिलता है दूर
राजधानी से कोई बस्वा दोपहर बाद छूटपटाता है
एक फटा कोठ एक हिलती चौकी एक लालटेन
दोना, वाप मिस्तरी, और बीस बरस का नरेन
दोना पहले से जानते हैं पेंच की मरी हुई चूड़ियाँ
नहरू मुम के औजारा की मुसद्दीलाल की सबसे बड़ी दा

अस्पताल में मरीज छोड़कर जा नहीं सक्ता तीमारदार
दूसरे दिन कौन बतायेगा कि वह कहाँ गया
निष्वासित होते हुए मैंने उसे देखा था
जगपुर-अधिवेशन जब समेटा जा रहा था
जो मजूर लगे हुए थे कुर्सी डोने में
उन्होंने देखा एक कोन में बैठा है
अजय अपमानित
वह उसे छोड़ गये
कुर्सी को
सनाटा छा गया

कितना आसान है नाम लिखा लेना
मरते मनुष्य के बारे में क्या कहें क्या मरते मनुष्य का
अन्तर्गत परिपद से पूछ कर तय करना है कितना
आसान है कितनी दिलचस्प है नहरू की
आशासा पाटिल की भत्सना की कथा
कितनी घुटन के अंदर घुटन के
अन्तर घुटन से कितनी सहज मुक्ति

कितना आसान है रख लेना अपने पास अपना वोट
 क्योंकि प्रतिद्वंद्वी आयोम्य है
 अत्याचारी हत्या किये जाय जब तक कि स्वर्णधूलि
 स्वर्णशिखर से आकर आत्मा के रचना पण्ड
 किये जाय
 गोल शब्दकोश में अमोल बोल तुतलाते
 भीमकाय भाषाविद हाँफते डकारते हँकाते
 अंग्रेजी की अवध्य गाय
 घटा घनघनाते पुजारी जयजयकार
 सरकार से वरार जारी हजार शब्द रोज
 वंद

रोज रोज एक और दल एक त्रोध एक बोध
 और नापैद
 कल पदा करना होगा भूखी पीढी को
 आज जो अनाज पट भरता है
 लो हम धले यह रखे हैं उबरक सम्बन्धी
 कुछ विचार
 मग्न से बोले विनोबा से जैनद्र दिल्ली में बहुत बड़ी लपसी
 पकायी गयी युद्ध से बदहवास
 जनता के लिए लडो या न लडो
 भारत पाकिस्तान अलग-अलग करो
 फिर मरो कदिल कर
 भूल जाओ
 राजनीति

अभ्यापक याद करो किसने आदमी हो तुम
 याद करो विद्यार्थी तुम्हें आदमी से
 एक दर्जा नीचे
 किसका आदमी बनना है—दद ?
 दद, गैराती अस्पताल में डाक्टर न कहा यह मरा काम नहा
 वह मुसद्दी का है
 कही भेजता है मुझे भिग्रर इगे अच्छा करा
 जा तुम बीमार हो ता तुमने उम पृग नहीं किया होगा

थव तुम बीमार हो तो उसे खश करो
कुछ करो
उसने कहा लोहिया से लोहिया न बहा
दुष्ट करा
रश हुआ वह चला गया अस्पताल म भीड
भीचक भीड घाय घाय
सो हजार लाख दद आठ दस प्रोध
तीन हजार बद बाजार भय भगदड गद
लाल

छाह, धूप छाह, नही घोडे ब दूक
धुआँ खन खत्म चीख
कर हम जानते नही
हम क्या बनात है
जब हम दफनाते हैं
एक हताश लडके की लाश बार-बार
एक बेवसी
थाडी सी मिटती है
फिर करन लगती है भाँय भाय
समय जो गया है उसके सनाटे म राष्ट्रपति
प्रकटे देते हुए सीख समाचार मे छपी
दुधमुही बच्ची घाती हुई भीख
खिसियाते कुलपति
मुसद्दीलाल
पिधियाते उपकुलपति
एक शब्द कही नही कि वह लडका कौन था
क्या उसने बहनें थी
क्या उसने रखले थे टीन के बक्से म अपने अजूबे
वह कौन कौन से पक्वान
खाता था
एक शब्द कही नही एक वह शब्द जो वह खोज
रहा था जब वह मारा गया ।

सनाटा छा गया
चिट्ठी लिखते लिखते छुटकी ने पूछा

'क्या दो वार लिख सकते हैं कि याद
आती है ?'

'एक वार मामी की एक वार मामा की ?'
नही, दोना वार मामी की'

'लिख सकती हो जरूर बेटी', मैंने कहा
समय आ गया है

दस बरस बाद फिर पदारूढ होत ही
नेतराम, पदयुक्त होत ही 'यायाधीश
कहता है । समय आ गया है—

मौका अच्छा देखकर प्रधानम श्री
पिटा हुआ दलपति अखबारा से

सुंदर नीजवाना से कहता है गाता बजाता
हारा हुआ देश ।

समय जो गया है

मेरे तलुवे से छनकर पाताल म

बह जानता हूँ मैं ।

मुक्ति प्रसंग

राजकमल चौधरी

जन्म सन् 1929, मृत्यु सन् 1967

वृत्तिया

- कविता सग्रह स्वरगधा (1958), ककावती (1964) मुक्ति प्रसंग (1966)
उपन्यास आदि कथा (1959) नदी बहती है (1961) एक अनार एक
बीमार (1964-65), मछली मरी हुई (1966) देह गाथा
(1966), शहर था शहर नहीं था (1966)
- कहानी सग्रह आदमी अब नहीं, आधी रात का सूरजमुखी, सामुद्रिक और अन्य
कहानियाँ ।
प्रस्तुत लम्बी कविता 'मुक्ति प्रसंग' पुस्तक रूप में पहली बार
1966 में प्रकाशित हुई थी ।

[एक ही प्रार्थना हो सकती है आधुनिक मनुष्य की व्यक्तिगत प्रार्थना अपनी मुक्ति के लिए —

सगठन और संस्थाओं के विरुद्ध हो जाना अर्थात् शासन तंत्र और सेनाओं के

विरुद्ध हो जाना अपनी इकाई रचाने के लिए एक ही प्रार्थना वास्तविक जीवन में और कविता में]

मुक्ति प्रसंग

दोनो आँखा की ज्वालामुखी पिघल जाने के उपरांत मैं उसकी बाह्य मे
यूनिसेफ एम्बुलस की दुगति मेरे नशे म डूबी हुई
मैं ही प्राप्त करूँगा

इस नगरवधू को महाशमसान बनाने का श्रेय
मेरे ही रक्त के शख चक्र सामुद्रिक स्वाद म
जलते हुए मेरे जोठ दुहराते हैं वही एक शब्द बार-बार बीजमंत्र
वही एक नाम कामतन्त्र

छत से पलंग तक झूलती हुई रस्सी का फदा और सर्जिकल अस्पताल
तक की इस स्वप्न यात्रा म कहता है उपाध्याय
कुछ नहीं होगा मुम्ह
वैसा जो नहा हुआ है अब तक मर्मान्तक विस्तु
मेरा चेहरा मेरी गरदन मेरे कंधे वाले पत्थर की अपनी बाँहो म
समेट कर वह मुस्कराती है वही होगा वही होगा
रोक लिया गया था
अब तक जिसे विपरीत ऋतुओ और मासिक नक्षत्रो के कारण
ममूगे हिल की नीली दरारा म योगसन
करती हुई देवक्याएँ
या नील नील र ओररत्रिज पर गाय हुए लावारिम
नील जंटापस
बोकाहोला के नीले म्नाम म

110 यहाँ भी घटम बचिता गद्दी होती

रम डालकर देह की राजनीति करती थी

मजू हालदार

नीली गद्दी थी मेरे गाँव की उमादिनी

नीली उग्रतारा

उपाध्याय कहता है कुछ नहीं होगा वापस चले आओगे तुम

गद्दी के तिनारे में वापस चले आना तुम्हारी नियति है हर बार प्रत्यागमन

यह जादियण यह नीलापन

तुम नहीं पाओगे अपराजिता कभी नहीं

मैंने नहीं ऋषि शंकराचार्य ने सागर-तट पर प्राप्त की थी

जाँघा म अग्निपिंड वाणी म स्तुति शब्द अग्नि म

ज्वालामुखी पिघल जाने के उपरांत

यह नीलकण्ठा

फिर भी मेरे ही रक्त का सामुद्रिक स्वाद में सने हुए मेरे ओठ कुहराने हैं

वही एक शब्द धार धार वही एक नाम वही एक नदी

वही एक नीली उग्रतारा

जिसे मैं धर्मवाद देना चाहता हूँ अपनी आंतरिक वृत्तभ्रता

इस दशमुख विध्वंस के लिए

सडी हुई आँखों का भवाद इशर की गंध बिडनी म

कौसर के रक्तध्वेत पुष्प

चौराहे पर मरा हुआ रक्तप्रलय कुण्डलिनी का काल-सप खण्ड खण्ड

खण्डित ध्वजा-दण्ड खण्डित मूर्तियाँ

अस्थि-सीमाओं की लक्ष्मण रेखाएँ नहीं रही दृष्टिदोष

मृत हुए

मेरे दशाश्वमेध के सभी अश्व नौकाएँ डूब गयी गंगाजल म

रवर के लाल-वैगनी ट्यूब नाक में नसों में

मेरे पेट म केवल वमन

नोद नहीं क्षुधा नहीं पायलपन केवल वमन यह दुराग्रह

उपदश महादश की नरककुण्ड बीजात्माएँ

अब भी मात्र उम एक नीलकण्ठा में मेरे लिए

परिणत हाँ

मैं धर्मवाद देना चाहता हूँ उसको मात्र एक उसको निर्विकार

इस दशमुख विध्वंस के लिए

क्योंकि रह जाता अखण्डित ध्वजा दण्ड तो मैं अपने ही

घटनाविहीन पूर्वजन्म के मरपट म
 भटवता रह जाता
 अपनी पितृशिला कूडता हुआ अकेले और से डल-होटल म
 मिने हुए अतीत-यानिया के साथ
 अपनी विधवाआ के माप गगासागर की तीपयात्रा
 प्रजा स्थानों के लिए
 प्रजा-जना के निरूपाय जुजूस म मौसमी डाट घामे हुए
 आकाशवाणी मे मौसम और गुद शशाआ की
 नपुंगक भूचनाएँ
 दैनिक समाचारपत्रा म बियतनाम हिन्दुनिगा रागा राडेणिया
 अपने दश म एटम बम बनेगा नहीं बागा
 नागरिक भद्र मठिलाएँ
 अपनी हरी-लाल-पीली-साफे-नानी छत्ररी के बदले अय से
 लूप छत्ररी या एटम छत्ररी इस्तमाल करें

ऑपरेशन टेबुल पर ईश्वर निद्रा मे अथवा सभोग की चरम परिणति म
 स्वाभाविक गुविद्याप्रद हागा मेरा मरण
 जीया के ऊपर कृष्ण प्रवेश के महारोगा से घस्त भूय
 साक्षात् अनिद्रा राशनकाड
 रेल-दुघटनाआ पगु मंथुन से ऊत्र कर
 मैं यही निणय किया
 उसने पहले अयात् एम्बुनेस में उसवे आगमन से पहले किन्तु
 बने यट मिद कर दिया जाएगा मैंने उस देया
 कामात्तजना म अपनी रवत नलियाआ के
 विपरीत प्रवाह म
 और कविता म —जटिल थे किन्तु लाघित-जयोछित भी थे
 काइ वाव्य-ग्रण्ड या प्रतिमा बनाने के योग्य नहीं थे अनुभव
 संगीत रग पीडाएँ मेर अतराल म
 रोगदग्ध परिस्थितियाँ
 मैं अपने जजर शरीर म तेरह हज़ार मील दूर निवासित मूगे की टूटी हुई माला
 अष्टघातु की अगूठी तीयजल की खाली चोतल म बत्
 सम्माहित वशीभूत प्रेत
 अपनी अतीन्द्रिय चेतना की अन्तहीन यात्रा प्रक्रिया से पलायित
 अभिप्रेत

इस प्रकार स्थान-यात्रो म घुलमिल जाता था सगीत
 बन जाता था जुलूस भूख माच हाहाकार
 रंग म अल्कोहल भापा मे केवल बीते हुए गलित ध्रण केवल चीत्कार
 आम चुनाव मे किस जाति को करना होगा मतदान
 कौलिक पूजागृह से चुरा कर बेचे गये
 शालिग्राम के बदले
 खरीद लाये गये शक्तिपीठ थोनिमुखो मे सात नरको की दुर्गाधिया
 भस्म हो गयी सती दहन दुर्गाध मे घुएँ मे
 इक्कीस साल पहले
 इडा पिंगला सुपुम्ना मेरी जुडवा बहनें
 अंतिम उपहार देकर मुझे नरहत्या क्षुधा मदिरा निद्रा नहीं केवल वमन
 शाम बाजार ओर टालीगज के फुटपाथा पर विक्रता हुआ
 मेरा अवचेतन
 और अब इतिहास पुस्तक की तरह इस आपरेशन टेबुल पर
 रोशनी के प्रज्वलित गोलाम्बर मे खुला पडा हुआ मेरा अस्तित्व
 एक बुझा हुआ लैम्पपोस्ट मेरी दो आँखो मे
 जाधो के बीच चौराह पर मरा हुआ रक्तवर्ण साप एक मरी हुई
 नदी मेरे पाँवा म लिपटी हुई एक स्त्री
 बरामदे पर खम्भे की आड मे आत्महत्या करती है कहती है लेकिन अब भी
 मुझको ही माकण्डेय मुनि
 मृत सागर म बटवक्ष के नीले पत्ते पर सोया हुआ
 यह आदिशिषु
 मैं ही उसे बाँहो मे उठाकर लाऊँगा
 पृथ्वी पर

मैं नहीं जानता लेकिन वह स्त्री कौन है मेरे चतुर्क सफेद गाउन सफेद
 मास्क सफेद प्लास्टिक-दास्तानो म छिपे हुए
 मेरी छाती ओर मेरे पेट पर झुके हुए कौन हैं इतने सारे लोग
 मैं कुछ नहीं जानता हूँ
 स्त्रिया नदिया बीमारियो भूख जम अपराधा ईश्वर मृत्यु दास्तावस्की
 हिरोशिमा विघान सभाआ के विषय म कुछ नहीं
 आत्मी क्या प्यार करता है युद्ध क्या परिवार नियोजन
 क्या यज्ञिन की दीवार
 क्या दश प्रेम क्या अफीम की गालियाँ क्या चप्पिन की फिल्म

क्यो ताशकद सम्मेलन क्यो रीठ की हड्डियो मे
गग्रीन

मादाम नू क्या क्यो दास-कैपिटल

क्या सुवरात क्यो सेगाव की बौद्ध भिक्षुणियाँ जल मरती हैं

क्या गार्गातुआ की कहातियाँ क्यो कश्मीर के लिए

सेनाएँ क्यो अजंता

क्या एक ही युद्ध मेरी कमर की हड्डियाँ मे और कभी वियतनाम म

होता है क्यो इन्दिरा गांधी क्या तुम वह

मैं क्या कुछ नहीं कुछ नहीं

अतएव मैंने फोन किया ब्लक आउट के अँधेरे मे उस पार

अपने रेडियोग्राम म डुवो हुई लडकी ने बताया सत्र हमारी मा मर गयी कल

रात सोफे पर लेटी थी चुपचाप मर गयी

काई बपडा नहीं है उसकी देह म सिफ एव दाग है स्तना के

बीच सीने पर

डुवी हुई लडकी को कोई उत्तर दिया नहीं मैंने केवल

पिछल साल भर के अखबार

रेडियोसेट कवियो और प्रकाशको के पत्र टेलीफोन पुरानी पाहुलिया

मनी प्लाट की लताएँ बरसा से बाद तीवार घड़ी

कलेण्डरो मे सीये हुए वच्चे हरिन फूल

चिडिया झरने पहाडी गाव औरतों चाय के वागान

बचपन का प्यार अलबम अपनी छोटी मा का हाथ धामे हुए चकित मैं

हरसिंगार के नीचे खडा हूँ

पराजय के तीस वर्षों मे एकर की गयी घम सेक्स इतिहास

समाज-परिकल्पना ज्यातिप की किताबे डाक टिकट

सिक्के सोवेनिर

मैं बडे डाकघर के बहुत बडे लेटरबक्स म डाल आया

वापस आकर अपनी स्त्री से मैंने कहा पुलिस पत्रकार कवि मित्र पार्टी कामरेड

कोई भी मिलने आये सूचित करना है—

सबके लिए सबके हित म अस्पताल चला गया है

राजकमल चौधरी

लिखने पढ़ने सोने गाँजा-अफीम सिगरेट पीने भरने का अपना एकमात्र कमरा

अन्दर से बंद करके दोपहर दिन के पसीने पेशाब बीघपात

मटमले अँधेरे म लेटे हुए

घुआँ प्रौघ दुर्गाघिया पीने रहने के सिवा

जिसने कभी कोई बड़ा काम नहीं किया अपनी देह
अथवा अपनी चेतना में

इस उच्च तत्व

जटिल हुए बिना कोई भी प्रतिभा बनाने के योग्य नहीं हुए उसने अनुभव
नहीं निद्राएँ और नहीं पैशाची सम्भोग

यातनाएँ भी नहीं

मेरे पैफडा के अन्दर मलत्याग की चम्पकी मुद्रा में बसा हुआ

स्वायंपोष नवली ईश्वर

देखता रहा है लगातार ऊँघती आधा से मेरी स्त्री का अवच्छिन्न गम विवर
कभी-कभी उसके क्षुरीदार वनमानुष पजे

मेरा व्याकरण छूने है

दोना पावो से पैडिल भारत है वह मेरी बिडिया को कभी कभी

जिसी भी नरभक्षी गुफा में वाकेन में कित्तवो में

जिसी भी लाश पर मुड़े हुए घुटना में

मुझको विक्षिप्त अथवा बहोश करने से पहले नीचे उतरता हुआ अँतडियों को

काली सीढिया में अचानक गायब हो जाता है वह ईश्वर

वह ईश्वर सिफ लिख भरमासुर लाओ तमे इस कुक्षेत्र में पराजित

दुर्योधन मेरे शरीर के सावारिस

पब्लिक पाक में

और/अथवा

विपतनाम में उड़ी पुछ में यू० एन० ओ० में तिब्बत बस्तर वाले अफ्रीका में

वह आगे बढ़ता है राइफल का निशाना साधने के लिए

मेरे ही कलेजे पर मस्तिष्क पर

वह मेरा सनिक वह मेरा जासूस वह मेरा ईश्वर

नागालैंड में विदेशी बमा से निरीह यानी रेलगाडिया उडाता है शांतिपूर्वक

शांतिपूर्वक कभी भेजता है कौरिया कभी क्यूबा कभी पाकिस्तान

कभी विपतनाम कभी अल्जीरिया

कभी अपनी सस्त्रुति कभी अपनी मशीन अपने टक जहाज हथियार

मूल्य नियंत्रण के लिए कभी उड़ीसा में दुर्भिक्ष

काहिरा में कभी शक्ति-सम्मेलन युद्ध अणु-आयुध नियंत्रण के लिए

कभी दण्ड कभी साम

कभी इसामसोह और कभी वश्याओ के नाम

निम्फेट लडविया के बनावार हत्या पशु पत्रणाओ के सगीतस्वर टेप में

संग्रह भरता है इयान ब्र डी कवि है

चार टाइपिस्ट लडकिया सचिवालय की छत से नीचे कूद जाती है

एक दिन एक साथ

चंद्रमा के वक्षस्थल पर बैठ कर चित्राकन करता है सर्वेयर विमान

वैज्ञानिक राजनेता और स्त्रीअंगा के व्यापारी

कुल तीन ही प्रभु जातिया रह गयी है अब स्वयम्भू अस्तु

मैं क्रीतदास हूँ

प्रभु जातिया के दासा का दासानुदास मेरे लिए

चिडियाँ हरिन फूल क्षरने नदी पहाड़ी स्त्रिया कच्ची सडकें और गाव

नहीं रह गय है

रह गये है अपन शरीर के क्षत विक्षत मासपिंड—मैं

केवल मासपिंड किंतु सोचता रहता हूँ

ईश्वर और सरकारी जामूमा के बारे में चुपचाप सोचता रहता हूँ नहीं

यहां नहीं मैं इस कटघरे में नहीं माथी दूंगा स्वीकार

नहीं करूंगा औरो के अपराध

मेरे वकील और मेरे 'यायाधीश यहाँ नहीं उम सफेद ठंडे

कमरे में

प्रतीक्षारत हूँ मेरे लिए यहाँ नहीं बालूगा

सफाई के वकीलो अभी मैं चुप हूँ और अभी मैं चिंताग्रस्त हूँ

केवल यह तमाशा देखता हूँ मैं अभी लोग किस तरह

ऊंची दीवारों पर सीढियाँ दर सीढिया लगाकर

उस पार कूद जाते हैं आखे बन्द किये पेट और पिडलियों पर रखे हुए

दोनों हाथ

और हाथा में अपना ही कटा हुआ सिर आत्मरति और

परपीडा के लिए

फाइलो रजिस्टरों की बन्द खिडकिया में छिपकर काली सफेद रोटिया

निगलते हैं किस तरह किस तरह अपने मालिकों के लिए

रखते हैं कंधे पर राइफल

माथे पर आय-करो के वही-खात दिमाग में व्यापारिक रहस्य व्यक्तित्व में

लचीलापन बाजार-दरा का रोकडो का

गहस्य पुष्पो गहस्य स्त्रियो गृहस्थ परिवार आयोजना के

जनताधिक सबधों को समझ लेना

अनिवाय है

मेरे दश और मैं मनुष्य का भविष्य निर्धारित करने के लिए अतीत

116 कहीं भी पत्न कविता नहीं होती

निर्धारित करने के लिये

में इतिहास पुस्तक की तरह खुला पडा हुआ हूँ
लेकिन मेरा देश मेरा पेट मेरा व्याडर मेरी अँतडिया खुलने से पहले
सजना को यह जान लेना होगा

हर जगह नहीं है जल अथवा रक्त अथवा मांस
अथवा मिटटी

केवल हवा कीडे जटम आर गन्दे पनाले हैं अधिक स्थाना पर इस देश में
जहाँ सड़ कर फट गयी हैं नमो वहाँ हवा तक नहीं
ऊपर की त्वचा चीरन पर जाग नहीं निवलेगी नहीं धुआ
जठराग्नि दावानल

सब वृक्ष गये अचानक पहले पन्द्रह अगस्त की पहली रात के बाद
अप राख ही राख बच गया है पीला मवाद

ग्यारह बजकर उनसठ मिनट पर हर रात शहीद-स्मारक के नीचे नगी होती
पागल काली एक मरी हुई स्त्री

उजाड़ आसमान में दाना बाँ फैला कर रोने के लिए

रोने हुए सो जान के लिए पानी और अनाज के देवताओं से भीख मागती है
तिरगा फहरान के अपराध में मार डाल गये

1942 के छात्रों के नाम पर

बारह दफा उसे चुप करती है राज्य सचिवालय की आत्मकद घड़ी

कुल एक मिनट बाद इस नाम पर कि पाच लाख

पच्चीस हजार छह सौ मिनटों के निमग्न मन चक्र में होते हैं

उत्प्रेक्षित आनामाम

एक सौ बीस लाख पच्चीस हजार भारतवासी

जासदियों के ध्रुवमुखी ग्राफ में भारत भाग्य विधाता चूहों से
कम खतरनाक नहीं होते

अतएव अरुण रादन सुनकर मीने तय किया था

स्मारकों और सचिवालयों की हमेशा के लिए भूल जाऊँगा

लेकिन

यह पागल काली मरी हुई जातकित अनगढ़ स्त्री चिपकाऊँगा

अपन ओठा में उसके ओठा में अपने शब्द

वाक्य भाषाएँ

अपने मुहायरा में उमकी बजर धरती को नहलाऊँगा

कविता लाकत में दाता में निग गुनि राजनर-स्वास्थ्यलायक यही होगा

बस्तर नागलैंड पालिम्पोग हजारीबाग की
 वाली पयरीली चट्टाने
 फ्री स्कूल स्ट्रीट अथवा पालियामे ट स्ट्रीट में मूर्तिमान स्थापित करना
 परने लायक और क्या बच गया है कम
 धारण करने लायक और क्या रह गया है अपना धर्म
 आवण्ट डूब गये हैं
 जितने भी थे प्राचीन सभ्य राजनीतिक सती विधवाआ की सस्कारी
 लोन-सप्रहवारी आत्महत्याआ में
 शवदाह के लिए उपयुक्त हैं निजी सेक्टर के नर्सिहा की
 जनजघाते
 स्थान-काल पात्र सब 'सायिक नयायिका के एकट त्रिल बजट में
 मिमेट आये हैं दूषित-दुग्घित

जीना चाहते थे जीवन धारण किये रहता चाहत थे मही था
 बालखिल्य ऋषिया का पाप दूरीलिय डूट वार मार
 चौन्हू बूद मात्र दूध के लिए
 लटकना
 पडता
 था

लोकतंत्र पर अटके हुए चमगादड-स्तनो में
 अपने राग अपनी भ्रष्ट अपनी नींद अपने युद्ध में प्रत्येक आदमी
 बालखिल्य ऋषि है अपने अन्दर
 किमी चमगादड मन्त्री उपमन्त्री जनपूर्णा उग्रतारा की एक मूर्ति
 अपने घर अपने मन्दिर में स्थापित करता है
 अपने पाँवों में बाधता है एक त एक साँप अथवा एक रक्तधारा नदी
 भगीरथ के वसज एक पुष्पदेहा जाह्नवी स्पश के बिना
 मोक्ष नहीं पाएँगे
 और जब 1966 में स्मरण करने से क्या लाभ है जाह्नवी के सह्या पुत्र
 मार डाले गये थे तीन रंग का एक त्रिचंडा
 अपने ही रक्त से रगे गये आकाश में फहराने के लिए
 चौबीस बय पहले जो बीत गया है उसे दुहरामा क्या जाए
 पाठ्यपुस्तका में अथवा दलाली के द्वारा लिख गये इतिहासों में
 इस नाटक के प्रारम्भ में ही अतएव
 अपने कवि से कहना चाहता था मैं आत्मरक्षा के लिए

जाजो प्रणति मुद्रा म

इस मूर्ति के सम्मुख झुक जाँ साष्टांग जात्मसमर्पित

स्वीकार कर लें इस युग के समस्त पाप

सीता और अहल्या से अब तक की सारी भ्रूण हत्याएँ हमने की हैं

हमने ही असुरा अग्निपिंडो चद्रमाजा कुमारी वयाआ से

किया है देवता ब्राह्मण रक्त तपण

दधीची अस्थिया का प्रभुसत्ता के दासा की हत्या म उपयोगी किया है

गलियो दूकाना कार्यालया कारखाना राजभवना के अहाते म

हड्डिया चवात हुए सारे श्वान पुरुष

रक्त मास वेचत हुए

हमारे आत्मज है हमारा ही रक्त वीय मज्जा रोग है उनम

साढे दस हजार वर्षों के अथवा परिश्रम से

इस ऊष्णगर्भा उवरा धरती को मरघट स्वच्छानुसार हमने ही बनाया है

मनु शत रूपा आगन मे सत्ता का विपवृदा

हमने ही लगाया है

आआ इस राजभवन म इस कारागह मे अतएव चि ताविमुक्त हा जाएँ

उतार डाने अपने चेहरे अपनी नकाव

अपना इतिहास कवच अपना वतमान शिरस्त्राण

नग्न निशस्त्र हा जाएँ ग्यारह बजकर उनसठ मिनट के सामने

अपन मुटिठयो म धामे हुए अपना व्याकरण

पुस्तकालयो विश्वविद्यालयो के चौराहो पर खडे हो जाएँ सुन नगरवासी सुनें

सम्राट हृषवद्वन आज वापस लेंगे प्रजाजना से राजपाट

अनसग्रह स्वण रथ माणिक सेना मुद्राएँ

सारा कुछ जनता से वापस लेकर अर्पित करेंगे ससदीय अधिनायकवाद के

चरणो पर

नीले काच का फूलदान है मरा देश

नये हृषवद्वन जयवद्वन के लडखडाते पावो की ठोकर से

टूट कर बिखर जाता है युद्ध और व्याधिया की इस वध्या ऋतु म

शीशे के बेडोल बदरग टुकडे

मरी देह की काली गुफाआ म घँसने है मेरे अन्दर जनायास वह

पौराणिक सप आकाशवाणी के राष्ट्रीय गीता स

सङ्गलुहान हो जाता है

फिर भी गभाधो की दास वक्ति पुष्पमालाएँ शिष्टाचार दशभक्ति बोकेन

लाता है नसा म नाभिरस-वस्तूरी-सचार

रोशनी की प्रायः मांसपिंडों की वेद छव्नियाँ
 रगों की आवृत्ति यणों के दस आयाम
 दह की राजनीति
 देह की राजनीति से विषट रानिषट और षोई राजनीति गही है मजय
 अन और अपीम की राजनीति यही शुरू होती है
 जन्म लेता है यहाँ मूह-मारीच
 सान सभा में अन्न मन्त्री बहते हैं घसत हैं षोई पाँच अरब चूह
 दस दश म
 वजट के अका टक्सा के रेखागणित में डूबे हुए दश में चूहों की
 जनसंख्या सबसे भयानक प्रश्न है
 लूप का इस्तमाल करना चाहिए निरन्तर आत्मसमय में लिए
 इस प्रश्न पर नियंत्रण के लिए
 यह प्रश्न ही है हमारा वर्तमान
 बचल बतमान में जीत है अब समस्त प्रजाजन
 मर जाते हैं अतीत में और भविष्य में मर जाने हैं
 भीड़ जुलूस लाठी चार्ज जन-आन्दोलन आम सभाओं के श्रोता बनना भोक्ता
 गहों के सिवा कोई बात नहीं कहना
 आदमी चन्द्रमा को बताना ही डाले अपना उपनिवेश
 आदमी ईश्वर शतान धर्म नीति से स्वाधीन हो जाए क्या होता है
 आदमी लिसे एन्सिडिटी का दशनविधान
 आदमी सुदूर दक्षिण वन जातियों में डूबता रहे येज पौधों की समाधि
 आत्मसाक्षात्कार
 आदमी बल्ल-बक से तीस करोड़ डालर ले आये
 आदमी खुद त्रिके अथवा वेच ही डाले अपनी स्त्री अपनी आँवें अपना देश
 मगर भीड़ अज्ञान के लिए गहों
 और सो जाने के लिए किसी भी गन्दे विस्तरे के सिवा कोई बात
 नहीं कहती है
 प्रजाजना के शब्दबोश में नहीं रह गये हैं दूसरे शब्द दूसरे वाक्य
 दूसरी चिन्ताएँ गही रह गयी है
 किन्तु भीड़ से विच्छिन्न असंपृक्त रहकर भी भीड़ से मुक्त में हो नहीं पाता हूँ
 मुक्त हो जाना कविता से पहले और मृत्यु से पहले
 मुक्त हो जाना असंभव है

पेयेडीन इ. सुलिन दवाखाने बच्चों के स्कूल में फीस क्षमा कराने के लिए

नींद के लिए सिनेमाघर राशन की दूकान रेडियो स्टेशन में
इंदिरा गांधी के बचपन पर वार्तालाप दुर्गा समारोह
रामकृष्ण-जात्रा में

सरकारी दूकान से गाँजा अफीम और खरीदना 50 नम्बर की शराब
आय कर विभाग को लिखना एक ही जवाब
इस उम्र तक दो हजार रुपये से ज्यादा किसी साल मेरी हुई नहीं किसी तरह
आमदनी चायखाना में बहस

कभी अपने आदमी कभी परायी औरतो के वारे में
पुस्तकालय रेल-यात्रा श्मशान अपने अकाल मत सबधियों के अस्थि फूल
लाने के लिए जुलूस के साथ

चलता हुआ मैं अपने गाव की नदी का नाम भूल जाता हूँ
वालीगज पील के अँधेरे में जकड़ लेते हैं
मुझे नीले आक्टोपस

शेयर बाजार की चढती उतरती सीढियाँ लहलुहान कर देती है मेरा चेहरा
योगासन करती हुई देवक्याएँ फ्री स्कूल-स्ट्रीट में
शहर की सारी बीमारियाँ तोहफे में देती है मुझे बिना मागे
बिना मागे मैं टाइपराइटर मशीन

बन जाता हूँ

डलहौजी स्वघायर के दफतरो का दफतरा के मालिको का मुखपात्र
कभी कभी वामू कभी कभी सान मगर

अन भी याद आता है लिपट से चढत हुए और
लिपट से उतरत हुए नौकरी की दरख्वास्तों इटरव्यू की कतारों भरत हुए
मेरे दास्त अपनी पत्निया के सहज सतीत्व पर निर्विकार फिर से
विश्वास करने लगे है

हँसने लगता हूँ मैं लिपट के नीचे

हवडा ब्रिज के नीचे

महारानी विक्टोरिया की महावाय मूर्ति के नीचे खडा होकर
मैं हँसने लगता हूँ

हँसता हुआ गाने लगता हूँ भारत भाग्य विधाता

जय हे जय हे

मुझे पकड़ लेती है अपने साथ ले जाती है सालबाजार के सवाल घर में
भारत की शांतिप्रिय पुलिस

एतिहासिक मूर्तिया का शील भग अपराध है गुरुतर
अपराध है

शहीद स्मारक के नीचे रान हुए नगे हो जाना निपराध रहने के लिए

जिस बेडौल टुकड़ा में बाट कर अलग जलग चाहते हैं

भोग करना बनिये सौदागर

इस दुनिया की सबसे नगी सबसे मजबूत औरत का नाम है वियतनाम

उत्तर वियतनाम और दक्षिण वियतनाम

उत्तर कोरिया और दक्षिण कारिया

सफेद अफ्रीका और काला अफ्रीका

पूर्वी जमनी और पश्चिमी जमनी

पाकिस्तान और हिंदुस्तान

सफेद अमरीका और काला अमरीका

जॉर्जन का अमरीका और एलेन गिम्बग का अमरीका

इंदिरा गांधी का हिंदुस्तान

और मलय रायचोधुरी का हिंदुस्तान

इस दुनिया की प्रत्येक मजबूत औरत नगी जोर दा टुकड़ा में बँटी हुई

यह औरत मेरी माँ और मेरी बीबी मेरा देश और मेरी जिन्दगी

ईसामसीह की आधी देह पेनिंग में

और आधी देह मास्को यूयाक में कास पर लटकी हुई

और -की शहग में

कविप्रो की शब्दावली में लिय गय शांति के समुक्त वनव्य

हाइड्राजन बम परीक्षण में पख फडफडात हुए

बबूतरो की मौत मर जात हैं

और बाकी शहरो में राजनीतिक वश्याआ न पीला मटमला अँधेरा फैला रक्खा

अपनी देह को उजागर करने के लिए

नई दिल्ली में और ढाका-कराँची में अब कोई पक्क नहीं है

कोई फर्क नहीं है एक गुलाम शहर से दूसरे गुलाम शहर में गायत और

किताबें और धम प्रवचन

एक साथ विकते हैं एक ही कीमता में विकत है

और गुलाम-शहरा का एकमात्र एकमात्र बच गया है लोकनायक अब

007 जेम्स ब्राड

चीनी अजदहे के पेट का चीरकर बाहर खीच लाएगा

हमार देश की चौदह हजार पाँच सौ वगमील पुण्यभूमि वही केवल वही

नायक है 007

नायिका है किसी भी फिल्म नोटकी नाटक हवामहल जनेन्द्र इयान पर्नेमग की

वह स्त्री जो हर अध्याय में एक बार
 अथवा अंतिम अध्याय में सौ बार नहीं हाती है उहुजनहिताय
 और हमारे भाग्य विधाता डॉलर रूबल पौड
 क्षेत्रों की भिक्षाटन यात्राओं में क्रमशः निर्वाज्य पारगत होत जा रह हैं साहसी
 और लॉकहेड 15 प्रति घंटे पैतालीस सौ मील उड़ता है
 और एशिया की मादाम नू योरप के जगलों में अपनी लडकी के साथ
 खो जाती है
 मोराविया की दो औरतें केवल दो औरतें
 और परमवीरचक्र स्वीकार करते हुए अपने मार डाले गये पति के शीय विक्रम की
 बातें करती है कविता त्यागी
 और हिन्दुस्तानी रुपये पर छपी हुई है जवाहरलाल नेहरू की तस्वीर
 और इस तस्वीर की कीमत अभी तक
 मुल 36 5 प्रतिशत नीचे गिरी है हम धन्यवाद करना चाहिए देशी सिडिकेट
 और विदेशी विश्वबैंक को
 और रुपये के अवमूल्यन के साथ भारतीय सम्स्कृति और सुदरता
 मूल्यवद्धि करती जा रही है अमरीका-योरप में
 बलवत्त गार्गी आम के पजाबी पेड यूयाव में लगा आने हैं
 बीटरस लडके बजाते हैं लगातार
 रविशंकर सितार

सोलन के तीसरे पाइंट में अपने गान की बात शुरू करत हैं फणीश्वरनाथ रेणु
 कमली ताजमनी नैना-जोगिन
 तीसरी बोटल में अरुण भारती अपनी फिल्मों का सहनायक बन जाता है
 फ्रेंजर राड की बड़ी दुकानों से इत्र की शीशियाँ
 और फूलदान खरीदने के लिए
 तीसरे ग्लास में शम्भूनाथ मिश्र कहता है पूठ है साहित्य इतिहास प्रेम साथ चलने के
 सारे वादे झूठ हैं सच है बबल गले में लटका हुआ ताबीज और वह
 भीरा और सजय के पास लौट आता है
 जतीत अथवा भविष्य की ये व्याख्याएँ देखने समझने के लिए किंतु
 मैं अभी तीमर ग्लास तीसरे पाइंट तीसरी बोटल की
 तीसरी कसम का गुलफाम नहीं हो पाता हूँ अपने इस गतिहीन बतमान में
 होने के बावजूद
 नहीं हो पाने की यह विडम्बना मेरे प्रभु
 मेरे ही लिए क्या

मेरे ही लिए क्यों सेट्रल होटल से सेन्ट्रल होटल की दूरी सात समुद्र
 चौंह ननिया की दूरी बनती है
 क्यों नहीं है मेरे लिए कोई नाम कोई नदी कोई चिड़ियाँ कोई फूल कोई सिद्धांत
 कोई दरख्त कोई राजनीतिक दल कोई जगल
 कोई साँप कोई गाव
 कोई स्त्री कोई सड़क कोई संगीत कोई नशा कोई प्रेम कोई घृणा
 कोई घर कोई आँगन कोई छाँव
 वापस लौट जाऊँ मैं जहाँ एउ बार फिर से अपनी यात्रा
 शुरू करन के लिए
 क्यों नहीं है मेरे लिए जीने में अथवा अन्तत मर जान में कोई कारण
 कोई सत्य कोई याय कोई आसपण
 जब कि अपन अस्तित्व अपने अनस्तित्व का संपूर्ण निणय
 मैंने छोड देना चाहा था
 अपनी उग्रतारा पर कविता से पहले
 और मृत्यु से पहले भी छोड देना चाहा था शकाहीन-अधहीन जीवन
 और मरण का अगणित संभालने के लिए
 श्रीचक्र के प्रस्फुटित कमल पर काममुद्रा में पडी
 वह आदिकारा
 मैंने छोड देना चाहा था अपना शिथिल शरीर उसके पावा के समीप
 निणय के लिए अथवा समपण

 अत्र मर जटमी घुटना से अपना चेहरा उठा कर मुझे बताओ जब तक मैं
 अपने जासूसी अपने पडोसिया अपने रक्त में
 तीक्ष्णस्थान करते हुए देवताओं से मुक्त हो पाऊँगा या नहीं
 मरी सड़कें मेरी शिराएँ मेरा यह छाटा सा दह नगर फोरसीटर-विज्ञापना
 नक्ली दवाआ से
 दनिक् समाचारपत्रा डी० आई० आर० आम-चुनाव पुलिस कानूनो से
 कैसर ससदीय अधिनायकवाद जाकाशवाणी से
 ऋणात्मक अथवा ट्रफिक की लाल हरी पीली बत्तियों से छटकारा
 अवकाश स्वाधीनता विच्छिन्न रहने की
 सुविधा
 कभी पाएगा या नहीं तुम मुझे बताओ राजकमल चीधरी मुझे बताओ
 इस आपरेशन टबुल पर निर्जीव पडे हुए
 तुम्हारे शरीर से निकलकर मैं अपन लिखने पढन

सोने रहने के कमरे में

बिस्ती दिन जा पाऊंगा या नहीं

छत से झूलती हुई रेशमी रस्सी में अपने सपनों और अपने नील का
हिंडाला झूला टांगने के लिए
अपने शरीर से मुक्ति दो मुझे अपने शहर अपनी दुनियाँ में
चले जाने दो

सत्तर रुपया का यह कमरा मेरा कमरा रहने दिया नहीं गया था आवाजें
दरवाजे ताड़न लगी थी
झनझनाती थी खिड़किया के शीशे तानाशाह रोशनी सचलाइटा की
साइरन की लम्बी जहरीली चीखों के ग्राद
फीजी स्वर में हर दफा काई गरजता है बाहर चले आजा
अभी बस गिरगा बाहर चल आजा अभी जकाल दुर्मिथ पड़ेगा बाहर
चले आओ अभी फटेगी ज्वालामुखी यह शहर
भस्म हो जाएगा
बाहर चले जाओ सुरक्षा छाड़या में छिपने के लिए
इस अपाहिज बेशम आवाज को मुझसे जोड़ने के लिए टाकघर अखबार
टेलीफोन दवा की दुकानों मनिआडर
उम्र के गम दिन बचने वाली स्त्रिया आकाशवाणी के
कायनामा का महाजाल
जिसने बुना है
कोई शिकायत नहीं है मुझे उससे कोई शिकायत नहीं है उन लोगों से मुझे
जो 'यूजप्रिंट' पर लिख रहे हैं मेरे देश का इतिहास
अथवा मेरे शरीर का आख्यान टेम्प्रेचर चाट पर
कोई शिकायत नहीं
शहर के फुटपाथा पर मैं अभीम और प्रकाशको की तलाश में
धूमता था अकेला और चुपचाप
अपने जैरो-गार दोस्ती के साथ पीकर 50 नम्बर रिक्शेवाली रिफ्यूजी स्त्रिया
विधायको पाठ्यपुस्तक विनैताओ सरकारी ठेकेदारा से
चगडता हुआ
गगनशी के घाट पर लडे होकर अस्पताल और अदालत के यात्रियों से लदे
दोमजिले स्टीमर और सुबह के धुधलके से ऊपर उभरता हुआ
सूरज चुरा ने भागने की योजनाएँ
अपने छोटे भाइया को समझात रहना घणा करनी चाहिए

वेतनभोगी शिक्षिका विवाहित महिलाओं से
लिखते रहना अपने इलाके के राज्यमन्त्री के लिए भाषण परिवार नियोजन
पंचसाला आयोजनों पर लेख

में चला जाता था वासघाट-शमसान अथवा ईसाई ग्रेवयाड

किसी सफेद चबूतरे पर रात काटने के लिए

— कोई शिकायत नहीं थी मुझसे नगरवासियों को पुलिस को

और अखबारतवीसों को

लेकिन

अबानक एक रात बन्कनाउट में बेहोश इम नगर के आदिम अंधेरे में

मैंने उसे देख लिया शहीद स्मारक के नीचे

रोते हुए वह नगी थी और रून से लथपथ थी और वह

कराहती हुई भागी जा रही थी

गर्जनों में मरघट में और राजभवनों में पुकारती हुई मेरा ही नाम बार-बार

गिरती हुई ठाकरें खाती हुई हँसती खिलखिलाती हुई

मैंने उसे देखा उमके कटे हुए दोनों स्तनों को जोड़कर बनाया गया है

पृथ्वी का गोलाम्बर

और वह बुझ हुए लैम्प पोस्टों को जलाने की कोशिश में

लहलुहान हो गयी है मैंने उसे देखा

और बार-बार उसके मुँह से अपना ही नाम सुन कर मैं अपने कमरे में

भाग आया

मैं अपनी कित्ताबा और अफीम गाजे में बन्द हो गया

वह मेरी चुन्नी हुई आखा में

मैं उसके स्तनों के गोलाम्बर में बन्द

अब हम कभी बाहर नहीं आएँगे न साइरन की चीख सुनकर और नहीं

राशा खरीदन के लिए

और हम दाना एक-दूसरे की नींद में सोय हुए थे

जब सर्जिकल अस्पताल की एम्बुलेंस गाड़ी हमारे कमरे के सामने आकर

रुक गयी

धीरे धीरे ठंडी और सफेद प्रैत-छायाओं से भरने लगा आपरेशन थियेटर

ईश्वर उतरता लगा मेरी अंतर्द्वारा की चक्करदार सीढ़ियों से नीचे

आगे नीचे किडनी से ब्लाडर से होकर

मून मागके भीतरी तरबाजे पर लाटा पीटते हुए हथौड़े से लगातार स्तनक देता हुआ

एनस्वस्तिया की कानी टांगी राहका हुआ मेरा चेहरा

मेरा अस्तित्व

अपनी जलौकिक नग्नता में डूब गया है

सनाविहीन ज्ञानहीन

समय अब मरे लिए केवल नीलापन है केवल नीलापन शून्य है

शून्य है स्थान काल और पात्र गतिहीन आवारहीन

शिवि फू वु कु फू

शिवि शिवि सोवू जे

वु कु सोवू जे

शिवि

अपनी कविता में पहले पाठ करता है यह जैन मात्र एलेन गिंसबग

आकार से भिन्न नहीं है शून्य शून्य से भिन्न नहीं आकार

आकार ही शून्य है शून्य है साकार

एनस्पेसिया की वाली टोपी से ढका हुआ चेहरा गति है

और अगति है

और इतिहास पुस्तक की तरह खुला हुआ अस्तित्व है और नहीं है

एक ही स्थान एक ही काल एक ही पात्र में

मेरे होने और नहीं होने की इस अनुभूति ने मुझको

उसके पावों के नीचे

शिव मूर्ति स्थापित कर दिया है समाधिस्थ

अब तुम मेरी पूजा करो जयतारा मैं सोया हुआ वतमान हूँ शिव हूँ

तुम्हारा संपूर्ण आत्मनिवेदन

स्वीकारने का एकमात्र मुझको रह गया है अधिकार

तुम्हारे पावों के नीचे होकर भी तुम्हारी जिह्वा में तुम्हारे स्तनों में

तुम्हारे योनिमाग में

तुम्हारी रक्त नलिकाओं में तुम्हारे हृदयपिंड में तुम्हारे मांस मज्जा अस्थियों में

तुम्हारे गर्भाशय में होना का

बार-बार इसी प्रकार होते रहने का अधिकार

मैं न उपलब्ध किया है इस प्रज्वलित प्रमत्त शीतल हिमखण्ड

आपरशान-टेबुल पर

कविता में पहले और मृत्यु से पहले

तुम मेरी पत्नी हो और मैं तुम्हारा इष्ट देवता हूँ और कवि हूँ तुम मुझे

जन्म देती हो और मेरे साथ रमण करती हो

तुम मुझे मुक्त करती हो

और मैं तुम्हें मुक्त करता हूँ अपने मरण में

अपनी कविता मे

प्रसंग एक

मृत व्यक्ति कोई भी एक मृत व्यक्ति केवल एक मृत व्यक्ति नहीं है किसी भी प्रकार
सरकारी ट्रासपाट से कुचल दिये गए कुत्ते अथवा ताताब की
सतह पर बितनी की फूली हुई
लाश से अधिक कवितामय अधिक सुंदर अधिक कामोत्तेजक हाता है मृत व्यक्ति
अस्पताल के पलंग में सोया हुआ वेदोश देव वर मुझको
एक अपरिचित स्त्री
मातमपुर्सी के लिए आयो हुई यही कहती थी

प्रसंग दो

मेरा जन्म हुआ था त्रिशूली पहाड़ की मनसिद्ध गुफा में बाली-मूर्ति के पाशव में
सद्य जात छाडकर मुझको चली गयी थी मेरी मा
ग्रहण करने के लिए जलसमाधि
अपनी मृत्यु के कुछ क्षण पूर्व उसने स्वीकार किया था अपना अपराध
अथवा यह वापस था गयी थी देखकर नीचे घाटी में एवाग्र प्रतीक्षारत
शिशुभन्धी गिद्ध
त्रिशूली गुफा के उस सवेत पथ पर अतएव बिखरी हुई
चटटाना में अलग अलग
घंटा हुआ है मेरा जीवन वाकन खण्डों में कटा हुआ भरी जाखा का आकाश
जिग पथ से भागती हुई मेरी मा के घुटन
पावों की उंगलिया तलुब पिंडलिया मुकीली चटटाना से हो गये थे
लहलुहान लहू के छोटे
मेरे आकाश के अलग अलग टुकड़ों को सूयमुग्धों करते हुए
अथवा जिह फिर से एक अखण्ड सुमेरु बनाने के लिए मैं एक-एक चटटान त्रयश
राजेन्द्र सजिवल अस्पताल के नीचे बहती हुई
गगानदी मे
फँकता जा रहा हूँ अपनी मा तीथमयी के आरण्यक सस्मरणों में
आकाश के एक एक टुकड़ अत्रकनन्दा में
अतत कविता में
वापस चली आने के कारण ही अनिवाय हो गया था माँ के लिए
वरण कर लेना मृत्यु
अन्तत कविता में उमे जीवित करने के लिए त्रिशूली गुफा में

मन्त्रसिद्ध मीने जन्मग्रहण किया है

प्रसंग तीन

प्रत्येक बार होना है प्रकृति के साथ निद्रामयी अचेतन समाधिस्थ प्रकृति के साथ
 वरर पैशाची बलात्कार
 जब भी मैं रचना चाहता हूँ कोई स्वप्न कोई कविता
 रत्न-नलिका से ब्रह्म-नलिका तक कोई यात्रापथ मुझे सभोग करना होता है
 विपरीत मुख बलत्कृत होकर ही वह मदालसा
 सप्टिष्ठवजादण्ड धारण करती है अपने पटचक्र-रथ पर रति व्याकुल होकर उत्प्ला
 रचना में योगिनी सहयोगिनी
 स्थान काल-मात्र की शारीरिक स्थितियाँ का अगर शीलभंग
 करती है मेरी कविता
 उसे अब और कुछ नहीं करना चाहिए

प्रसंग-चार

सुरक्षा के मोड़ में ही सबसे पहले मरता है आत्मी अपने शरीर के इदगिद
 दीवारों ऊपर उठाता हुआ
 मिट्टी के भिक्षापान आगे और आगे और आगे बढ़ाता हुआ गेहूँ
 और हथियारबंद हवाईजहाजों के लिए
 नेपाल मोहविहीन होकर ही जबकि नगा भूखा बीमार
 आदमी सुरक्षित होता है

प्रसंग पाच

अपनी देह सीमाओं के विषय में इश्वर के प्रति
 एक ही प्रार्थना हो सकती है आधुनिक मनुष्य की व्यक्तिगत प्रार्थना
 अपनी मुक्ति के लिए—
 सगठन और समस्याओं के विरुद्ध हो जाना अथात् शासन-तंत्र और सेनाओं के
 विरुद्ध हो जाना अपनी इकाई बचाने के लिए एक ही प्रार्थना
 वास्तविक जीवन में और कविता में

प्रसंग-छह

तरह हजार बप पहले मेरुदण्ड-पर्वत की वाली चट्टानों से तराश ली गयी
 तरह बप की एक लडकी का नाम है उग्रतारा
 जबकि वह उग्र नहीं है और वह तारा भी नहीं है भर लिए केवल

उपप्रतारा है

प्रसंग-सात

मुक्ति के विषय में सोचता हुआ मैं सो गया था वेहाश लेकिन बसे हुए दा पजे
मेरा गला दबाने लगे कोई चीख तक नहीं निकलेगी

मेरे कण्ठ रङ्घ से

प्राणरक्षा के लिए अपन शरीर से बाहर निकलकर

मैं सामने दीवार पर नीले कीड़े की तरह चिपक गया पलंग पर छटपटाती

साश देरता हुआ

मेरे ही दोनों पजे मेरी गदन दबाये जा रहे हैं इसलिए शरीर से

बाहर निकल कर ही मुक्ति के विषय में

निष्पत्ति का सपना है

प्रसंग-आठ

आदमी को तोड़ती नहीं हैं लोकतांत्रिक पद्धतियाँ केवल पट के बल

उसे झुका देती हैं धीरे धीरे अपाहिज

धीरे धीरे नपुमक बना लेने के लिए उसे शिष्ट राजभक्त देशप्रेमी नागरिक
बना लेती हैं

आदमी को इस लोकतन्त्री सत्तार से अलग हो जाना चाहिए

चने जाना चाहिए कस्सायो गाँजाखोर साधुआ

भिखमगो अफीमची रडियो की काली और अधी दुनियाँ में मसाना में
अधजली लार्से मोच कर

छाने रहना थोमस्कर है जीवित पडोसिया को खा जाने से

हम लोगो को अब शामिल नहा रहना है

इस धरती से आदमी को हमेशा के लिए खत्म कर देने की

साजिश में

पटकथा

धूमिल (वास्तविक नाम सुदामा पाण्डेय)

जन्म 1936, मृत्यु 1975

कृतियाँ

।।

कविता संग्रह ससद से सडक तक (1972)

कल मुनना मुझे (1977)

प्रस्तुत कविता पटकथा उनके कविता संग्रह 'ससद से सडक तक' में संकलित है।

[सुनो ।
आज मैं तुम्हें सत्य वह बतलाता हूँ
जिसके आगे हर सच्चाई
छोटी है । इस दुनियाँ में
भूखे आदमी का सबसे बड़ा तक
रोटी है ।]

पटकथा

जब मैं बाहर आया
मेरे हाथा म
एक कविता थी और दिमाग मे
आता का एवसा रे ।
वह काला धब्बा
जो बल तक एक शब्द था,
छून के अघेरे म
दवा की शीशी का ट्रेडमाक
बन गया था ।
धीरता के लिए गैर जरूरी होने के बाद
अपनी ऊब का
दूसरा समाधान ढूढना जरूरी है ।
मैंने साचा !
क्याकि शब्द और स्वाद के बीच
अपनी भूख को जिंदा रखना
जीभ और जाध के स्थानिक भूगोल की
वाजिन मजतूरी है ।
मैंने साचा और सस्कार क
वजित इलाको मे
अपनी आदतो का शिकार
होन से पहले ही
बाहर चला आया ।

[सुनो !
आज मैं तुम्हें सत्य वह बतलाता हूँ
जिसके आगे हर सच्चाई
छोटी है। इस दुनिया में
भूखे आदमी का सत्रगे पडा तक
रोटी है।]

पटकथा

जय मैं बाहर आया
मेरे हाथा म
एक कविता थी और दिमाग मे
आंता का एक्स रे ।
वह वाला घन्टा
जो कल तक एक शब्द था,
खून के अंधेरे म
दवा की शीशी का ट्रेडमार्क
बन गया था ।
औरता के लिए गैर जरूरी होने के बाद
अपनी ऊज का
दूसरा समाधान ढूढना जरूरी है ।
मैंन साचा ।
क्याकि शब्द और स्वाद के बीच
अपनी भूख को जिंदा रखना
जीभ और जाघ के स्थानिक भूगोल की
याजिव मजबूरी है ।
मैंन सोचा और सस्वार के
वजित इलाको मे
अपनी आदता का शिक्वार
होने से पहले ही
बाहर चला आया ।

बाहर हवा थी
 धूप थी
 पास थी
 मैंन कहा आजादी ।
 मुझे अच्छी तरह याद है—
 मैंन यही कहा था
 मेरी नस-नस म बिजली
 दौड रही थी
 उत्साह म
 खुद मेरा स्वर
 मुझे अजनबी लग रहा था
 मैंन कहा— आ जा दी
 ओर दौडता हुआ खेतों की जोर
 गया । वहा कतार के कतार
 आज के अँकुए फूट रहे थे
 मैंन कहा — जसे कसरत करत हुए
 बच्चे । तारा पर
 चिडियाँ चहचहा रही थी
 मैंने कहा— कासे की बजती हुई घटियाँ
 खेत की मेड पार करते हुए
 मैंने एक बैल की पीठ थपथपाई
 सडक पर जाते हुए आदमी से
 उसका नाम पूछा
 और कहा— बघाई
 घर लौटकर
 मैंने सारी बत्तिया जला दी
 पुरानी तसबीरो को दीवार से
 उतारकर
 उह साफ किया
 और फिर उहें दीवार पर (उसी जगह)
 टांग दिया ।
 मैंने दरवाजे के बाहर
 एक पौधा लगाया और कहा—
 वन महोत्सव

और दर तक

हवा में गरदा उतरा उचकाकर

सम्ब्री-सम्ब्री सास घीबता रहा

देर तक महसूस करता रहा —

वि मेर भीतर

यक्त का सामना करने के लिए

ओमतन जवान खून है

मगर, मुझे शांति चाहिए

इसलिए घाली दरब म

एक जाना क़तूर लार डान दिया

‘गू गुटरगू गू गुटरगू’

और चहकत हुए वहाँ —

यही मेरी आस्था है

यही मेरा वानून है

इस तरह जो था उसे मैंने

जी भरकर प्यार दिया

और जा नहीं था

उसना इतजार किया ।

मैंने इतजार किया —

अब कोई बच्चा

भूखा रहकर स्कूल नहीं जाएगा ।

अब कोई छत बारिश में

नहीं टपकेगी

अब कोई आदमी कपडों की लाचारी में

अपना नगा चेहरा नहीं पहनगा

अब कोई दवा के अभाव में

घुट घुटकर नहीं मरेगा

अब कोई किसी की रोटी नहीं छीनेगा

कहीं किसी को नगा नहीं करेगा

अब यह जमीन अपनी है

आसमान अपना है

जैसा पहले हुआ करता था —

सूष, हमारा सपना है

मैं इत्तजार करता रहा
 इत्तजार करता रहा
 इत्तजार करता रहा
 जनतंत्र, त्याग, स्वतंत्रता
 सस्कृति, शांति, मनुष्यता
 ये सारे शब्द थे
 सुनहरे वाद थे
 खुशफहम इराद थे
 सुन्दर थे
 मौलिक थे
 मुखर थे
 मैं सुनता रहा
 सुनता रहा
 सुनता रहा
 मतदान होत रहे
 मैं अपनी सम्मोहित बुद्धि के नीचे
 उसी लोकनायक को
 बार-बार चुनता रहा
 जिसके पास हर शका जीर
 हर सवाल का
 एक ही जवाब था
 यानी कि कोट के वरुन होल म
 महकता हुआ एक फूल
 गुलाब का ।
 वह हमें विश्वशांति और पचशील के सूत्र
 समझाता रहा । मैं खुद का
 समझाता रहा — 'जो मैं चाहता हूँ—
 वही होगा । होगा—आज नहीं ता कल
 मगर, सब कुछ सही होगा ।

भीड़ बढ़ती रही ।
 चौंराहे चौड़े होते रहे ।
 लोग अपने-अपने हिस्से का जनाज
 खाकर— निरापद भाव से

बच्चे जात रह
 योजनाएँ चलती रही
 बंदूका के बारघानों म
 जूते बनत रहे ।
 और जय कभी मौसम उतार पर
 होता था । हमारा सशय
 हमें काबता था । हम उत्तेजित होकर
 पूछने थे— यह क्या है ?
 ऐसा क्या है ?
 फिर वहाँ हाती थी
 मन्ना के जगल म
 हम एक दूसरे को काटत थे
 भापा की छाई को
 जुवान से कम और जूता से
 ज्यादा पाटते थे
 कभी वह हारता रहा
 कभी हम जीतत रहे
 इसी तरह नाम झोक चलती रही
 दिन बीतत रहे

मगर एक दिन मैं स्तब्ध रह गया
 मेरा सारा धीरज
 युद्ध की आग से पिघलती हुई बफ म
 वह गया
 मैंने देखा कि मैदाना मे
 नदिया की जगह
 मरे हुए साँपा की कंचुले बिछी है
 पड—
 टूटे हुए रेंडार की तरह खडे है
 दूर-दूर तक
 कोई मौसम नहीं है
 लोग—
 घरों के भीतर नगे हो गये है
 और बाहर मुर्दे पडे हैं

विधवाएँ तमगा लूट रही है
 सधवाएँ मगल गा रही है
 वन महोत्सव से लौटी हुईं कायप्रणालिया
 अकाल का लगर चला रही है
 जगह जगह तख्तिया लटक रही है—
 'यह श्मशान है यहा की तसवीर लेना
 सख्त मना है।'

फिर भी इस उजाड मे
 वही-कही घास का हरा होना
 कितना डरावना है
 मैंन जचरज से देखा कि दुनिया का
 सबसे बडा बौद्ध मठ
 बारूद का सबसे बडा गोदाम है
 अखबार के मटमले हाशिये पर
 लेटे हुए एक तटस्थ जोर बोडी देवता का
 शांतिवाद, नाम है
 यह मेरा देश है
 यह मेरा देश है
 हिमालय से लेकर हिंद महासागर तक
 फला हुआ
 जली हुई मिटटी का ढेर है
 जहाँ हर तीसरी जुवान का मतलब—
 नफरत है।
 साजिश है।
 अघेर है।
 यह मेरा देश है
 और यह मेरे देश की जनता है
 जनता क्या है ?
 एक शब्द सिफ एक शब्द है
 मुहरा और बीचड जोर बीच से
 बना हुआ ।
 एन भेड है
 जा दूमरा की ठड के लिए
 अपनी पीठ पर

ऊन की फसल ढो रही है ।
 एग पेड़ है
 जो ढानान पर
 हर आती जाती हवा की जुवाग म
 हाँस हाँस करता है
 क्याकि अपनी हरियाली से
 छरता है ।
 गाँवो के गद पनाला से लेकर
 बाहर के शिवालो तक पैली हुई
 'बधावलि' की एग अमूत मुद्रा है
 यह जनता ।
 जनता मे
 उसकी श्रद्धा
 अटूट है
 उसको समझा दिया गया है कि यहाँ
 ऐसा जनता है जिसम
 जिंदा रहन के लिए
 घोड़े और घास को
 एग जसी छूट है
 कसी बिडम्बना है
 कसा झूठ
 दरअस्त, अपने यहाँ जनता
 एग ऐसा तमाशा है
 जिसकी जान
 मदारी की भाषा है

हर तरफ धुआँ है
 हर तरफ कुहासा है
 जो दाँतो और दलदला का दलाल है
 वही देशभवन है
 अघकार मे सुरक्षित होने का नाम है—
 तटस्थता । यहाँ
 कायरता के चेहरे पर
 सबसे ज्यादा रक्त है ।

जिसाग पास घाती है
हर भूया आत्मी
उमने लिए सबस भदी —
गाती है

हर तरफ गुआ है
हर तरफ घादी है
यहाँ, सिफ, यह आदमी, दश के बरीब है
जो या तो मूख है
या फिर गरीब है

मैं सोचता रहा,
और घमता रहा—
टूटे हुए पुला के नीचे
घोरान सटका पर। आँखों के
अधे रगिस्ताना म।
फटे हुए पालो की अघूरी जल यात्राया म
टूटी हुई चीजा के ढेर म
मैं छोई हुई जाजादी का अय
ढूढता रहा।
अपनी पसलिया के नीचे। अस्पताला के
बिस्तरो पर। नुमाइशी मे
बाजारो म। गाँवो मे
जगलो मे। पहाडो पर
देश के इस छोर से उस छोर तक
उसी लोक चेतना को
बार बार टेस्ता रहा
जो मुझे दोबारा जो सबे
जो मुये शाति दे और
मेरे भीतर बाहर का जहर
खुद पीस दे

— और तभी मुलम उठा पश्चिमी सीमात
ध्वस्त ध्वस्त ध्वात ध्वात

मैं दोबारा चौकचर घडा हो गया
 जो चेहरा आत्महीनता की स्वीकृति में
 कर्घ पर लुढ़क रहा था,
 किसी क्षणक्षणाते हुए चाकू की तरह
 गुलपर, बढा हो गया ।
 अचानक, अपने-आप में जिंदा होने की
 यह घटना
 इस दश की परम्परा की —
 एक बेमिसाल बढी थी
 लेकिन इसे साहस मत कहो ।
 दरअसल, यह पुटठो तब चोट खाई हुई
 गाय की घण्टा थी
 (जिंदा रहने की पुरजोर कोशिश)
 जो उस आदमघोर की हविस से
 बढी थी ।

मगर उसके तुरंत बाद
 मुझे झेलनी पडी थी — सबसे बडी द्रजेडी
 अपने इतिहास की
 जब दुनिया के स्याह और मफेद चेहरो ने
 विस्मय से दखा कि ताशवन्द में
 समझौते की सफेद चादर के नीचे
 एक शान्ति-यानी की लाश थी
 और जब यह किसी पीराणिक कथा के
 उपसंहार की तरह है कि इस देश में
 रोशनी उन पहाडों से आई थी
 जहाँ मेरे पडोसी ने मात
 खाई थी

मगर फिर मैं वहीं बना गया
 अपने जनून के अधरे में
 फूल खराना के हाथा
 घना गया ।
 वहाँ बजर मदान

कबाला को गुमायश कर रहे थे
 गोदाम अनाज से भरे पड़े थे और लोग
 भूखा मर रहे थे
 मैंने महसूस किया कि मैं वक्त के
 एक क्षमताक दौर से गुजर रहा हूँ
 अब ऐसा वक्त आ गया है जब कोई
 किसी का झुलसा हुआ चेहरा नहीं देखता है
 अब न तो कोई किसी का पाली पेट
 देखता है, न थरथरती हुई टाँगें
 और न ढला हुआ 'सूयहीन कंधा' देखता है
 हर आदमी, सिर्फ, अपना घोंघा देखता है
 सबन भाईचारा भुला दिया है
 आत्मा की सरलता को मारकर
 मतलब के अधेरे में (एक राष्ट्रीय मुद्दावरे की बगल में)
 मुला दिया है।
 सहानुभूति और प्यार
 अब ऐसा छलावा है जिसके जरिये
 एक आदमी दूसरे को, अकेले —
 अधेरे में ले जाता है और
 उसकी पीठ में छुरा भोंक देता है
 ठीक उस मोची की तरह जो चीक से
 गुजरते हुए देहाती को
 प्यार से बुलाता है और मरम्मत के काम पर
 रबर के तल्ले में
 लोहे की तीन दजन फुल्लिया
 ठोक देता है और उसके नहीं नहीं के बावजूद
 डपटकर पैसा वसूलता है
 गरज यह कि अपराध
 अपने महा एक ऐसा सदाबहार फूल है
 जो आत्मीयता की खाद पर
 लाल भडक फूलता है
 मैंने देखा कि इस जनतात्रिक जगल में
 हर तरफ हत्याआ के नीचे से निकलने हैं
 हरे हरे हाथ और पेडा पर

पत्तो की जुवान बनकर लटक जाते हैं
 व ऐसी भाषा बोलते हैं जिसे मुँकर
 नागरिकता की गोघूलि म
 पर लौटते हुए मुसाफिर
 अपना रास्ता भटक जाते हैं

उन्होंने किसी चीज को
 सही जगह नहीं रहने दिया है
 न रापा
 न विशेषण
 न गवनाम
 एर समूचा और सही वाक्य
 टूटकर
 बिगड़ गया है
 उठाया व्याकरण इस देश की
 शिराआ म छिपे हुए कारका का
 हत्यारा है
 उनकी सशक्त पकड़ के नीचे
 भूख से मरा हुआ आदमी
 इस मौसम का
 सबसे दिलचस्प विनापन है और गाय
 सबसे सटीक नारा है
 वे भेतो म भूख और शहरा मे
 अफवाहा के पुलिदे फेंकते हैं
 देश और घम और नैतिकता की
 दुहाई देकर
 कुछ लोगो की सुविधा
 दूसरा की 'हाथ' पर संकने हैं
 व जिसकी पीठ ठाकते हैं —
 उमने रीत की हडनी गायन हा जाती है
 व मुस्कराते है आर
 दूमेरे की आस म शपटती हुई प्रनिहिमा
 बरवट बदनाम हो जाती है
 मैं दयता रहा—

देखता रहा—

हर तरफ ऊब थी

मगध था

उफरत थी

मगर हर आदमी अपनी जहरतो के आगे

जसहाय था । उसमे

सारी चीजाँ को ऐसे सिरे से बदलन की

यत्ननी थी, रोय था,

मेनिन उसका गुस्ता

एक तथ्यहीन मिथ्यण था

आग और आँसू और हाय था ।

इस तरह एक दिन—

जब मैं घूमने घूमन घब घुवा था

मेरे घूमन में एक बाली आँधी —

दौड़ लगा रही थी

मरी अगपनगाभा में मोये हुए

यहनी इरातों को

झातगोरख र जगा रही थी

अघातन, गीद की अमंगल पर्णों में

दृवो हुए मैं । देखा

कि मरी उतासा के अंधेरे में

एक हम नया वरदा है

मैं । उमम पूछा — तुम कीज हा ?

मरी बर्बा आण हो ?

मुझे छोओ ।

मुझे जिओ । मेरे साथ चला

मेरा यकीन करो । इस दलदल से

बाहर निकलो ।

मुनो ।

तुम चाह जिसे चुनो

मगर इसे नहीं । इसे बदलो ।'

मुझे लगा—आवाज

जसे किसी जलते हुए कुएँ से

आ रही है

एक अजीब सी प्यार भरी गुर्राहट

जैसे कोई मादा भेड़िया

अपने छौने को दूध पिला रही है और

साथ ही किसी मेमने का सिर चवा रही है

मेरा सारा जिस्म धरधरा रहा था

उसकी आवाज मे

असह्य नकों की घणा भरी थी

वह एक एक शब्द चवा चवाकर

बोल रहा था । मगर उसकी आँख

गुस्से में भी हरी थी

वह कह रहा था—

'तुम्हारी आँखों के चक्काचूर आईना में

वकत की बदरग छायाएँ उल्टी कर रही हैं

और तुम पेड़ों की छाल गिनकर

भविष्य का कार्यक्रम तैयार कर रहे हो

तुम एक ऐसी जिन्दगी से गुजर रहे हो

जिसमें न कोई तुक है

न सुख है

तुम अपनी शापित परछाईं से टकराकर

रास्ते में रुक गए हो

तुम जो हर चीज

अपने दातों के नीचे

खाने के आदी हो

चाहे वह सपना हो अथवा आज्ञानी हो

अचानक, इस तरह, क्यों चुक गए हो
 वह क्या है जिसने तुम्हें
 बबरो के सामने अबद से
 रहना सिखलाया है ?
 क्या यह विश्वास की कमी है
 जो तुम्हारी भलमनसाहत बन गई है
 या कि शम
 जब तुम्हारी सहूलियत बन गई है
 नहीं— सरलता की तरफ इस तरह
 मत दौड़ो
 उसम भूख और मंदिर की रोशनी का
 रिश्ता है। वह बनिये की पूजा का
 आधार है
 मैं बार बार कहता हूँ कि इस उलझी हुई—
 दुनिया म
 आसानी में समझ में आनेवाली चीज
 सिर्फ दीवार है।
 और यह दीवार अब तुम्हारी आदत का
 हिस्सा बन गई है
 इसे झटक कर अलग करो
 अपनी आदतों में
 फूलों की जगह पत्थर भरा
 मासूमियत के हर तकाजे को
 ठोकर मार दो
 अब वक्त गया है कि तुम उठो
 और अपनी ऊँच को आकार दो।

सुनो !

आज मैं तुम्हें सत्य बतलाता हूँ
 जिसके आगे हर सच्चाई
 छोटी है। इस दुनिया म
 भ्रूँसे आदमी का सबसे बड़ा तर्क
 रोगी है
 मगर तुम्हारी भ्रूँ और भाषा म

यदि सही दूरी नहीं है
 तो तुम अपने-आपको आदमी मत कहो
 क्योंकि पशुता —
 सिफ़ पूछ होने की मजबूरी नहीं है
 यह आदमी को भी वही ले जाती है
 जहाँ भ्रूष
 सबसे पहले भाषा को घाती है
 बचत सिफ़ उसका चेहरा बिगाड़ता है
 जो अपने चेहर की राख
 दूसरो की शमाल से झाड़ता है
 जो अपना हाथ
 मैला होने से डरता है
 वह एक नहीं ग्यारह कायरो की
 मौत मरता है
 और सुनो ! नफरत और रोशनी
 सिफ़ उसके हिस्से की चीज़ है
 जिसे जगल क हाशिये पर
 जीने की तमीज़ है
 इसलिए उठो और अपने भीतर
 साए हुए जगल को
 आवाज़ दो
 उसे जगाओ और देखो—
 कि तुम अकेले नहीं हो
 और न किसी के मुहताज हो
 लाखा है जा तुम्हारे इतजार म खडे हैं
 वहा चलो । उनका साथ दो
 और इस तिलस्म का जादू उतारने मे
 उनकी मदद करो और साबित करो
 कि ये सारी चीजें अधी हो गई हैं ।
 जिनमे तुम शरीक नहीं हो ।
 मैं पूरी तत्परता से उसे सुन रहा था

एव के बाद दूसरा
 दूसरे के बाद तीसरा

तीसरे के बाद चौथा
 चौथे के बाद पाचवा
 यानी कि एक के बाद दूसरा विकल्प
 चुन रहा था
 मगर मैं हिचक रहा था
 क्योंकि मेरे पास
 कुल जमा थोड़ी सुविधाएँ थी
 जो मेरी सीमाएँ थी
 यद्यपि यह सही है कि मैं
 कोई ठंडा आदमी नहीं हूँ
 मुझ में भी आग—है
 मगर वह
 भभक्कर धाहर नहीं आती
 क्योंकि उसके चारों तरफ चक्कर काटता हुआ
 एक 'पूजीवादी दिमाग है
 जो परिवर्तन तो चाहता है
 मगर आहिस्ता-आहिस्ता
 कुछ इस तरह कि चीजों की शालीनता
 बनी रहे ।
 कुछ इस तरह कि बाप भी डँकी रहे
 और विरोध में उठे हुए हाथ की
 मुट्ठी भी तंगी रहे ।
 और यही वजह है कि बात
 फसले की हद तक
 आत-जात रुक जाती है
 यद्यपि हर बार
 घट टूट्ठी सुविधाओं की सालख के सामने
 अभियोग की भाषा चुक जाती है

मैं मुद को कुरद रहा था
 अपने बहाने उन तमाम लोगों की असफलताओं को
 मोटा रहा था जो मेरे नज़रों में थे ।
 हम तरह मापन और मोटे विचारों पर
 जमी हुई बार्ड और उगी हुई पाग का

धरोच रहा था, नाच रहा था
 पूरे समाज की सीमन उधेछने हुए
 मैं आदमी के भीतर थी मल
 द्य ली थी । मेरा सिर
 भिना रहा था
 मेरा हृदय भारी था
 मेरा शरीर इस बुरी तरह पना था कि मैं
 अपनी तरफ घूरत हुए उस चहरे से
 धाडी देर के लिए
 बचना चाह रहा था
 जो अपनी पंती जाँखा स
 मेरी बेवसी और मेरा उमलापन
 थाह रहा था
 प्रस्तावित भीड में
 शरीक होन के लिए
 अभी मैं कोई निणय नहीं लिया था
 अचानक, उसने मेरा हाथ पकडकर
 खीच लिया और मैं
 जेब में जूतो का टोकन और दिमाग में
 ताजे अखवार की बतरन लिए हुए
 घडाम से—
 चीथे आम चुनाव की सीढियो से फिसलकर
 मत पेटिया के

गडगच्च अघेरे में गिर पडा
 नीद के भीतर यह दूसरी नीद है
 और मुझे कुछ नहीं सूझ रहा है
 सिफ एक शोर है
 जिसमें काना के पर्दे फटे जा रहे हैं
 शासन सुरक्षा राजगार शिक्षा
 राष्ट्रधर्म देशहित हिंसा अहिंसा
 सयशक्ति देशभक्ति जाजादी वीसा
 वाद बिरादरी भूख भीख भाषा
 शक्ति शक्ति, शीतयुद्ध एटम बम सीमा

150 रही भी परम कविता नहीं होती

एकता सीढियाँ साहित्यिक पीढियाँ निराशा
झायं झायं, खायं खांयं, हाय-हाय, साप-सांय

मैंने बानो मे ठूस ली हूँ अँगुलियाँ
और अघरे मे गाड दी है
आँखों की रोशनी ।

सब-कुछ अब धीरे धीरे खुलने लगा है
मत-वर्षा के इस दादुर शोर मे
मैंने देखा हर तरफ
रग बिरगे झडे फहरा रहे हैं
गिरगिट की तरह रग बदलते हुए
गुट से गुट टकरा रहे है
वे एक-दूसरे से दाँता किलकिल कर रहे हैं
एक दूसरे को दुर दुर बिल बिल कर रहे हैं
हर तरफ तरह-तरह के जंतु हैं

भीमान बिंतु हैं

मिस्टर परन्तु हैं

कुछ रोगी है

कुछ भोगी हैं

कुछ हिजडे हैं

कुछ जोगी हैं

तिजोरिया के

प्रशिक्षित दलाल हं

आँखो के अघे हैं

घर के कगाल है

गूगे हैं

बहरे हैं

उयले है गहरे है

गिरते हुए लोग हैं

अकडते हुए लोग है

भागते हुए लोग हं

पकडते हुए लोग है

गरज यह कि हर तरह के लोग हैं

एक दूसरे से नफरत करत हुए व

इस बात पर सहमत हैं कि इस देश में
 असह्य रोग हैं
 और उनका एवमान इलाज—
 चुनाव है।
 लेकिन मुझे लगा कि एक विशाल दलदल के किनारे
 बहुत बड़ा अधमरा पशु पड़ा हुआ है
 उसकी नाभि में एक सड़ा हुआ घाव है
 जिससे लगातार—भयानक बदबूदार मयाद
 बह रहा है
 उसमें जाति और धर्म और सम्प्रदाय और
 पेशा और पूजा के असह्य कीड़े
 किलबिला रहे हैं और अधिकार में
 डूबी हुई पृथ्वी
 (पता नहीं किस अनहोनी की प्रतीक्षा में)
 इस भीषण सड़ांध को चुपचाप सह रही है
 मगर आपस में नफरत करत हुए वे लोग
 इस बात पर सहमत हैं कि
 'चुनाव' ही सही इलाज है
 क्योंकि बुरे और बुरे के बीच से
 किसी हद तक 'बम से-बम बुरे को' चुनते हुए
 न उह मलाल है, न भय है
 न लाज है
 दरअसल, उह एक मौका मिला है
 और इसी बहाने
 वे अपने पड़ोसी को पराजित कर रहे हैं
 मैंने देखा कि हर तरफ
 मूढता की हरी हरी घास लहरा रही है
 जिसे कुछ जगली पशु
 खूद रहे हैं
 लीद रहे हैं
 चर रहे हैं

मैंने ऊब और गुस्से का
 गलत मुहरा के नीचे से गुजरते हुए देखा

मैंने अहिंसा को

एक सत्कारुणिक शब्द का गला काटते हुए देखा

मैंने ईमानदारी को अपनी चौर जेबें

मरते हुए देखा

मैंने विवेक को

चापलूसों के तलवे चाटते हुए देखा ।

मैं यह सब देख ही रहा था एक नया रेला आया ।

उमत्त लोगो का बर्बर जलूस । वे किसी आदमी

को हाथों पर गठरी की तरह उछाल रहे थे

उसे एक दूसरे से छीन रहे थे । उसे घसीट रहे थे ।

धम रहे थे । पीट रहे थे । गालिया दे रहे थे ।

गले से लगा रहे थे । उसकी प्रशंसा के गीत

गा रहे थे । उस पर अनगिनत झड़े फहरा रहे थे ।

उसकी जीभ बाहर लटक रही थी । उसकी आंखें बंद

थीं । उसका चेहरा खून और आसू से तर था । 'मूर्खों !

यह क्या कर रहे हो । मैं चिल्लाया । और तभी किसी

न उसे मेरी ओर उछाल दिया । अरे ! यह कस हुआ ?

मैं हतप्रभ सा खड़ा था

और मेरा हमशकल

मेरे परा के पास

मूर्च्छित-सा

पड़ा था

दुख और भय से एक झुरझुरी लेकर

मैं उस पर झुक गया

किंतु बीच ही में रुक गया

उसका हाथ ऊपर उठा था

खून और आसू से तर चेहरा

मुस्बुराया था । उसकी आंखों का हरापन

उसकी आवाज में उतर आया था—

'दुखी मत हो । यही मरी नियति है ।

मैं हिन्दुस्तान हूँ । जन भी मैंने

नहीं उजाले से जाड़ा है

उहाने मुझे इसी तरह अपमानित किया है ।
इसी तरह तोडा है ।
मगर समय गवाह है
कि मेरी बेचैनी के आगे भी राह है'

मैंने गुना । वह आहिस्ता-आहिस्ता कह रहा है
जैसे किसी जले हुए जगल में
पानी का एक ठंडा सोता बह रहा है
घास की ताज़गी भरी
एसी आवाज़ है
जो न किसी से खुश है, न नाराज़ है ।
'भूख ने उन्हें जानवर बन दिया है
सशय न उन्हें आप्रता से भर दिया है
फिर भी वे अपने हैं
अपने हैं
अपने हैं
जीवित भविष्य के सुन्दरतम सपने हैं
नहीं—यह मेरे लिए दुखी होने का समय
नहीं है । अपन लोगो की घणा के
इस महोत्सव में
मैं क्षापित निश्चय हूँ
मुझे किसी से भय नहीं है ।

तुम मेरी चिन्ता मत करो । उनके साथ
चलो । इससे पहले कि वे
गलत हाथों के हथियार हा
इससे पहले कि वे नारा और इशितहारा से
काले बाज़ार हो
उनसे मिलो । उन्हें बदलो ।
नहीं—भीड़ के खिलाफ रुकना
एक खूनी विचार है
क्याकि हर ठहरा हुआ आदमी
इस हिंसक भीड़ का
अधा शिकार है ।

तुम भरी चिन्ता मत करो ।
 मैं हर वक़्त सिर्फ़ एक चेहरा रही हूँ
 जहाँ बतमा
 अपना शिवारी कुत्ते उतारता है
 अक़सर मैं मिटटी या हरक़त करता हुआ
 यह टुकड़ा हूँ
 जा थादमी की शिराआ में
 बहते हुए पून का
 उससे सही नाम से पुकारता है
 इसलिए मैं कहता हूँ जाओ और
 देखो कि वे लोग

मैं कुछ कहना ही चाहता था कि एक घबके ने
 मुझे दूर फेंक दिया । इससे पहले कि मैं गिरता
 किन्हीं मजबूत हाथा ने मुझे टेक लिया ।
 अचानक भीड़ से निकलकर एक प्रशिक्षित दलाल
 मेरी देह में समा गया । दूसरा मेरे हाथा में
 एक पर्ची धमा गया । तीसरे ने मुझे एक मुहर देकर
 परदे के पीछे ढकेल दिया ।
 भय और अनिश्चय के दुहरे दबाव में
 पता नहीं क्या और कैसे और कहा—
 कितने नामा और चिह्न और शब्दा का
 काटते हुए मैं चीख पड़ा—
 हत्यारा ! हत्यारा !! हत्यारा !!!

[मुझे ठीक ठीक याद नहीं है । मैंने यह किसको कहा था । शायद अपने आपका
 शायद उस हमशकल को (जिसने खुद को हिन्दुस्तान कहा था) शायद उस दलाल
 को मगर मुझे ठीक ठीक याद नहीं है]

मेरी नींद टूट चुकी थी
 मेरा पूरा जिम्म पसीन में
 सराबोर था । मेरे आसपास से
 तरह तरह के लोग गुजर रहे थे ।
 हर तरफ़ हलचल थी, शोर था ।

कुछ लोग बह रहे थे कि इन दिना
 एक खास परिवर्तन हुआ है
 जनता जगी है। सब
 प्रभु की माया है
 एक लम्बे इतजार के बाद
 भीजा का असली नेहरा
 उजाला म आया है
 और मैं चुपचाप सुनता हूँ
 हाँ शायद—
 मैं भी अपने भीतर
 (वही बहुत गहरे)
 'बुद्ध जलता हुआ-सा' छुआ है
 लेकिन मैं जानता हूँ कि जो बुद्ध हुआ है
 नींद में हुआ है
 और तब से आज तब
 नींद और नींद के बीच का जगल काटते हुए
 मैंने कई रातें जागकर गुजार दी हैं
 हफ्ता पर हफ्ते तह किये हैं
 अपनी परेशानी के
 निमम अकेले और बेहद अनमन क्षण
 जिये हैं।
 और हरबार मुझे लगा है कि वही
 कोई खास पक्ष नहीं है
 जिंदगी उसी पुराने ढर्रे पर चल रही है
 जिसके पीछे कोई तब नहीं है

हाँ वह सही है कि इन दिना
 कुछ अजियाँ मजूर हुई हैं
 कुछ तबादले हुए हैं
 कल तक जो नहले थे
 आज
 दहले हुए हैं

हाँ, यह सही है कि इन दिना

मन्त्री जब प्रजा के सामने आता है
 तो पहल से
 कुछ ज्यादा मुस्वराता है
 गये-नये वाद करता है
 और यह सब सिफ घास के
 सामन होने की मजदूरी है
 यना उस भलेमानुस को
 यह भी पता नही है कि विधान सभा भवन
 और अपने निजी विस्तर के बीच
 कितने जूता की दूरी है ।

हाँ, यह सही है कि इन दिना चीजा के
 भाव कुछ चढ गये हैं । अखबारो के
 शीपक दिलचस्प हैं नये हैं ।

मदी की मार से
 पट पडी हुई चीजें, बाजार मे
 सहसा उछल गई हैं
 हाँ, यह सही है कि कुर्सियाँ वही हैं
 सिफ टोपिया बदल गई है
 और—

सच्चे मतभेद के अभाव म
 लोग उछल उछलकर
 अपनी जगह बदल रहे है
 चढी हुई नदी मे
 भरी हुई नाव म
 हर तरफ विरोधी विचारो का
 दलदल है
 सतहो पर हलचल है
 नये नये नार है
 भाषण मे जोश है
 पानी ही पानी है

पर
 को
 च
 ड

घामोश है

मैं रोज देघता हूँ कि व्यवस्था की मशीन का
एक पुर्जा गरम होकर
अलग छिटक गया है और
ठडा होते ही
फिर नुर्सी से चिपक गया है
उसमे न ह्या है
7 दया है

नहीं— अपना बाई हमदद
यहाँ नहीं है। मैंने एक एक को
परप लिया है।
मैंने हरेक को आधाज दी है
हरेक का दरवाजा खटखटाया है
मगर बेकार। मैंने जिसकी पूछ
उठाई है उसको मादा
पाया है
व सवने सब तिजारिया के
दुभापिये हैं।
व वकील हैं। वज्ञानिक हैं।
अध्यापक हैं। नेता हैं। दासतिक
हैं। लेखक हैं। कवि हैं। कलाकार हैं।
यानि कि—
कानून की भापा बोलता हुआ
अपराधियो का एक सयुक्त परिवार है।

भूख और भूख की आड मे
बघाई गई चीजो का अक्स
उनके दाँता पर बूढ़ना
बेकार है। समाजवाद
उनकी जुबान पर अपनी सुरक्षा का
एक आधुनिक मुहावरा है।
मगर मैं जानता हूँ कि मरे देश का समाजवाद

158 कही भी परम कविता नहीं होती

मालगादाम म लटकती हुई
उन चाल्टियो की तरह है जिस पर 'आग' लिखा है
और उनम बालू और पानी भरा है ।

यहाँ जनता एव गाड़ी है

एव ही सविधान के नीचे
भूख से रिरियाती हुई फली हथेली का नाम
'गया' है
और भूख में
तनी हुई मुट्ठी का नाम
नक्सलवादी है

मुझसे कहा गया कि ससद
देश की घडवन को
प्रतिबिंबित करने वाला दपण है
जनता को
जनता के विचारो का
नैतिक समर्पण है
लेकिन क्या यह सच है ?
या यह सच है कि
अपन यहा ससद —
तेली की वह घानी है
जिसम आधा तेल है
और आधा पानी है
और यदि यह सच नहीं है
तो वहा एक ईमानदार आदमी को
अपनी ईमानदारी का
मलाल क्या है ?
जिसने सत्य कह दिया है
उसका बुरा हाल क्या है ?

मैं अक्सर अपने आपसे सवाल
करता हूँ जिसका मेरे पास

कोई उत्तर नहीं है
 और आज तब—
 नौद और नौद के बीच का जगल काटते हुए
 मैं नई रातें जागकर
 गुजार दो हूँ
 हृत्ता पर हृत्ता तय किए हैं। ऊब के
 निमम अकेले और बेहद अनमा क्षण
 जिये हैं।
 मेरे सामन वही चिरपरिचित अधकार है
 सनाप की अनिश्चयप्रस्त ठगी मुद्राएँ हैं
 हर तरफ
 शब्दघी सप्ताटा है।
 दरिद्र की ध्यया की तरह
 उचाट और कूषता हुआ। घृणा म
 हुआ हुआ सारा का सारा देश
 पहलें की तरह आज भी
 मेरा कारागार है।



आज या कल या सौ बरस बाद

अमृता भारती

जन्म सन् 1937, नजीबाबाद (उ० प्र०)

कृतियाँ

कविता संग्रह मैं तट पर हूँ (1971)

आज या कल या सौ बरस बाद (1975)

मिट्टी पर साथ-साथ (1976)

सम्पादन 'नवजीवन पथ' साप्ताहिक तथा 'पश्यन्ती'

पता श्री अरविन्द आश्रम, अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-1100016

प्रस्तुत लम्बी कविता 'आज या कल या सौ बरस बाद' पुस्तक रूप में पहली बार 1975 में प्रकाशित हुई थी।

[आगे भी क्या यही होगा
कि छोटे आदमी की तस्वीर
और भी छोटी होती चली जायेगी
और चौखटा
चिटकता रहेगा
उसको बढ़ती हुई घामोशी के आतक से ?]

आज या कल या सौ बरस बाद

कब तक
इतिहास
ऐसे ही लिखा जाता रहेगा
कब तक आदमी
उनके तलवों की रगत बखानता रहेगा
जो तब भी राजा थे
और अब भी राजा हैं।

झुर्रियों में पड़ी हुई बहानियाँ
बक्त की
वही रह गयी
फाले घोड़े का सवार
और उड़ती हुई पताका
मैली पगड़ी की लपेट में छो गये।

कब तक चर्चा होती रहेगी
उनकी
जो बड़े युद्धों के नामक होकर भी लड़ाई में जिन्दा रह
और अदना आदमी
इस तरह गिना जाता रहा
'दस हजार
बीस हजार या तीस हजार

164 रही भी पत्न्य रचिता नहीं होती

वाम आये'

अब आदमी को ईश्वर रही गढ़ता
अपनी शकल म
या ईश्वर ही गढ़ता है
दूसरी शकल म ।

चौराहा पर
लगी हुई मूर्तियाँ
ज्या-गतर ज-ही की है
जि-होन बोई लडाईं नहीं
तमगा जीता था ।

धरती की खामाशी म
उलटी पड़ी
छोटे आदमी की तस्वीर
सीधी होत वक्त और भी खामोश नजर आयी ।

जाये भी क्या यही होगा ?

राजधानी व किनारे
उड़ती हुई मद
ऊँटो के शरीर की तरह बड़ी होती रहेगी
और रंगिस्तान
अपनी निरभ्रता को
पूरे देश की जडो में डालेगा ?

जाये भी क्या यही होगा
कि छोटे आदमी की तस्वीर
और भी छोटी होती चली जायगी
और चौखटा
चिटकता रहेगा
उसकी बढ़ती हुई खामाशी के आतक से ?

अपने ही देश में
 पीछे लौटत हुए
 मुझे ये लोग याद आते हैं
 जो राजा भी थे और पकीर भी
 और उनका एक हाथ तब भी मिट्टी पर होता था
 जब व पानी या आग पर चलत थे ।

राजाआ की शक्ती में
 फकीरा के नक्श मलते चले गये
 और इतिहास सोन के पानी से लिखा जात लगा
 धीरे धीरे व सब बातें पुराण हो गयी
 और पुराण
 कपोल कल्पना ।

अत्र आदमी की चमड़ी का
 जूता पहनने वाले लोग राजा है ।
 अहिंसन जूता का व्यापार बढ रहा है
 आदमी मारा नहीं जा रहा
 अपनी चमड़ी के नीचे
 खुद ही मर रहा है ।

अपने ही देश में या
 दुनिया में
 पीछे लौटत हुए या
 आगे चलत हुए—
 मुझे एक चीज और याद भी आती है
 वह भटमली किताब
 जिसे आदमी ने
 आदमी के लिये नहीं लिखा था

वह भटमली किताब
 जिसके सीले हुए पन्ना पर
 करोडा लोगो की भूख के गडढे थे

166 कही भी घटम नयिता नही होती

मिट्टी के पास बैठा हुआ आदमी
उस किताब के साथ ही दफनाया जाता रहा
वीरान सुनसानो म
और कारनामे
सुनहरे जक्षरो मे
सुरक्षित होते रहे ।

लेकिन पृथिवी अदर भी चलती है
मीलो नीचे
अपनी ही कोण के अदर
और याय हर बार ऊपर ही नही होता
मिट्टी की निममता
बहुत कुछ खाती है
वे कीडे भी
जिंह बडा आदमी पालता है
मटमैली किताब का इतिहास खाने के लिये

कही भी तो कुछ नही है ऐसा

कही भी तो कुछ नही है ऐसा
जो बस्तियो को साबुत रख सके
वारिश मे दब गयी
वस्तियो के ऊपर
आधी रात ।

सुबह होन पर भी रोशनी नही होगी

सुबह होने पर भी रोशनी नही होगी
उनके घरा और आसमान के बीच एक पूरी दुनिया है
हर रोज कुछ और बटी होती हुई ।

इमारता को बनानवाल
उनके खुरदरे हाथ

और भी खुरदरे होत रहे ।
 उहने सिफ काम के घटे गिने के
 राटी खरीदते वक्त
 अपने घर की वह धूप नहीं
 जिसे उन्होंने
 इमारतो की जडा म रखा था ।

व सिफ रोटी मांगते हैं या कपडा
 या तीज-स्वोहारा के लिए कुछ—
 — कुछ ऐसा
 जिसस बीबी बच्चे पूरे साल
 उनके अपने छप्पर के नीचे रह सके
 उहाने रोशनी के पीसे नहीं मांगे
 जिस उहोंने श्रम के साथ-साथ बेचा था

वही भी ता कुछ नहीं है ऐसा
 जो बडे घरा की रोशनिया को
 बेनकाब कर दे
 काच से बाहर—
 आग जो जलती रहे, जलती रहे
 निमम ऊंचाइया को राख करती हुई
 उनके खुरदर हाथा के करीब ।

जडो के पाम बठी वह धूप
 कसी निममता स
 उन इमारता म ही ऊंची होकर फलती चली गयी
 और वे देखते रहे ।

पर वही कुछ है ऐसा
 वही बोई
 जो अपने माथे पर बंधा
 पुराना कपडा खोल रहा है
 मिट्टी और सूरज को
 साथ-साथ तोल रहा है ।

उसे मैं क्या दूगी
 उस आदमी के खुले माथे को ?
 उसके पुराने कपड़े को
 मुट्ठी में भीचते वक्त
 लहलुहान हुई हथेली या
 हथेली का आशीर्वाद—

उस आदमी को क्या दूगी
 जिसके साथ
 मैं अजनबी की तरह
 बरसों से या
 शुरू से ही चलती रही ?

माथे का कपड़ा खुलते ही
 मैं उसके करीब हो गयी थी ।
 इतन करीब
 कि वह
 एक हाथ में मिटटी जोर सूरज
 और दूसरे हाथ में
 मिले हुए चंद सिक्कों को लेकर
 चौराहे पर खड़ा हो गया था
 और हँसती हुई भीड़
 अचानक सजीदा होती चली गयी थी ।

मैं उसे क्या दूगी
 लहलुहान हथेली
 जिसे वह सूयमुखी की तरह
 अपने माथे पर बाँधेगा या
 नगर-बाहर का छूटा हुआ अधकार
 जिसे चौराहे पर लाते ही
 वह मार दिया जायगा
 वह आदमी
 जिसके आस-पास बटी हो रही भीड़
 जब बलने लगी है

उन चन्द सिक्का के पिलाप

ये उसके रक्त के ढेर को जमा कर
 एक प्रतिमा बनायेंग
 ये परोदार लोग, फिर
 उस लाल पत्थर की आग पर
 धीरे धीरे अपन तहपानो का
 माला पानी सीप देगे ।

एक के बाद एक
 जिवह होता चला जायगा आदमी
 चौराहे पर घटा होनवाला हर आदमी
 जिसके साथ मैं
 बरसो से या
 शुरू से ही
 अजनबी की तरह चलती रही ।

धीरे माथे के खुले हुए पुरान कपडे से
 मरी हथेली
 लड्डूखान होती रहेगी
 एक के बाद एक
 मेरी सारी ही हथेलियाँ ।

मैं उसे क्या दूगी
 उसके खुले माथे को
 सूयमुखी का आशीर्वाद
 या
 वह रग
 जो लाल पत्थर की आग पर
 किसी भी पानी को चढने नहीं देता
 काले या सफेद या पीले
 किसी भी पानी को
 मैं उसे क्या दूगी
 उसके साथ

बार बार जिवह होती हुई ?

बतन माजते हुए
उसने अपनी उम्र बताया थी
यही होगी बोई दस, बारह या
पंद्रह साल' ।

आकाश विद्या जाननवाला यह देश
भी नहीं जानता
उसकी उम्र
जो गोद से निकलत ही
सडका पर आया था
और तबसे
धूप और छाया में
समय का अंदाज करते हुए
सडक के किनारे चल रहा है ।

उसके लिये
सुबह सिर्फ सुबह होती है
और शाम सिर्फ शाम ही
वह दिनों को महीने में
और महीनों को साल में
कैसे जोड़े
जबकि आज और कल और परसों
हमेशाकल है उसके लिये
सुई दर सुई एक चाल में चलत हुए ।
वह यह भी कह देता
साठ साल
तो भी क्या फक पडता
आकाशविद्या जाननेवाले इस देश को
जो सिर्फ उनकी उम्र जानता है
जो अभी तक भारतमाता की गोद में चढ़े हैं
कधे तक उठे हुए

और हर साल
साठ या सत्तर या अस्सी या
नब्बे मोमदिये बुझात हैं
बिलायती मिठाई पर ।

तारों 'चीयस' के साथ ही बदलती हैं
उठे हुए गितासा के बीच ।

चाय की वाली भाप में
पिघलती हुई ठंड
बार बार जम जाती है वहां
उसके मेले बपड़ा के करीब
उसकी उगलियों के सुन्न नीलेपन में—
नहीं
और भी आगे
उसकी सुबह के करीब
उसकी रात के करीब
जब तारीख बदलने का समय होता है ।

उसके चले जान के बाद
उसकी आंखों की
छूटी हुई चमक में
मैं उसका जन्मदिन ढूँढती हूँ
सुबह और रात का वह क्षण
जब दिन को कोई नाम दिया जाता है ।
उसके लिये
बलेण्डर बनाने की सारी योजनाओं के बावजूद
वें सारी तारीखें हाथ से निकल गयीं
जिन पर मैंने लाल स्याही से
किसी न किसी त्योहार का निशान बनाया था ।

रक्त में चमकती हुई छाया
उन तारीखा की
और उसकी आंखों के करीब

उठता हुआ शोर
सब धीरे धीरे बैठ गया ।

दिन यो ही फाड़े जाते रहे
एक के बाद एक
और लाल तारीखा पर
अपनी फटी एडियो के काले निशान रखता
वह चलता रहा
धूप में दरक गयी
सड़क के साथ मा ।

पता नहीं
कब बड़ा होगा आदमी
पता नहीं कब
सचमुच ही
बड़ा होगा आदमी ?
इच दर इच
नीच आ रह हूँ दिन
पहाड़ों के कंधा से
इच दर इच
पानी बफ बन रहा है
घर अंदर होते जा रहे हैं ।

पता नहीं कब
बड़े होकर जलेंगे चूल्हे
पता नहीं कब
सचमुच ही
बड़े होकर जलेंगे चूल्हे

अधरे की जाच से
जब रोटियाँ नहीं सिकती
अधरे की आँच से
अब तम्बाकू नहीं महकता

यह म्याल सिफ एन क्षण को ही आता है
 कभी हम भी भूखे थे
 या अब वे भूखे है—
 भूख से आदमी मर भी जाता है ।

मर भी जाता है ?
 हाँ, मर भी जाता है
 उस सबसे बड़ी भूख से
 जा पेट म लगती है
 और आँखों से निबलती है
 हाँ, उस भूख से आदमी मर भी जाता है ।

फिर क्या होगा ?
 बल फिर क्या होगा
 नाचघर या चायघर या शराबघर म ?
 इच दर इच
 छोटा होता चला जायेगा आदमी
 हसता हुआ पीता हुआ बहकता हुआ ।

और परसा ?
 परसा और भी छोटा होगा आदमी
 पत्यरा वाली इमारत म बैठकर
 दलीलें देता हुआ
 'भूख से नहीं, वे
 रक्त की कमी से मरे हैं ।'

पता नहीं
 कब बडे होंगे शमशान
 पता नहीं कब
 सचमुच ही
 बडे होंगे शमशान

और वह चौराहा
 जो सकरी गलियों म चला गया

पता नहीं क्या लौटेगा
 पता नहीं क्या लौटेगा
 उनके साथ
 जो सामुच ही बड़े हा रहे हैं
 और गिरे हुए लागा या
 छाटे ही सही, लेकिन
 जाने पैर दे रहे हैं ।

आकाश अब नीचे नहीं झुकता
 न तो उस आदमी के सिर पर
 जो अपने अदर ही
 बहुत दूर चला गया
 न उस आदमी के करीब
 जो अपने से बाहर छड़ा है ।

आकाश की धूप अब कीड़े नहीं खाती
 आकाश की धूप अब कीच नहीं सुखाती
 और न तो सुबह के वक़्त ही
 रात की मैली चादर धोती है ।

कीड़े बड़े होते जा रहे हैं
 और दलदलें गहरी
 अंधेरे का पता नहीं,
 कब अन्त होगा ?

ये सब धीरे धीरे अभ्यस्त हो गए
 कीड़ों के
 कीच के
 अधिकार के
 धहा तक कि उनकी मीत के भी
 जिनके बालों से अभी तक
 मा के जिस्म की गंध जाती है ।

अब प्रकृति सिर्फ चुप्पी हुए फूलों से पड़ता है
 या अन्दर जलने वाली आग से ।
 सड़ाई इन दोनों के बीच है
 इन दो आगों के बीच
 जो बाहर जलती नहीं
 और अन्दर चुनती गरी ।

इस छोटे से मुद्दे की योजना
 उठाने नहीं बनायी
 जिन्हें सड़ना पड़ रहा है
 और इनमें जीत हार कुछ नहीं हाती
 बस लड़ने वाला आदमी युक्तता रहता है
 और रोशनी एव शरफ इकट्ठी होती रहती है ।

इन सबकी सड़ाई को
 मैं बौन सा शस्त्र दू
 जा इनका पतरा बरख दे
 और इनके मीचे बदमा का
 ऊट चाल कर दे ।

शतरज के वे बड़े मोहरे
 अपनी जगह से हिलते तब नहीं
 उस आखिरी दाँव तब
 जब तक कि सब रास्ते साफ नहीं हो जाते ।
 यह दो बादशाहों या
 दो बजीरा या दो हाथी फोडा-ऊँटों
 की लड़ाई भी नहीं है
 सिर्फ पदल मर रहे हैं—
 धँधेरी छतों के नीचे
 सुल्ले के लोच
 जो रोशनी में आते ही
 सिपाही की तरह दीखने लगते थे ।

मैं इस दृढ़ता के खेल को
 कौन सी शक्ति दू
 कि वे छोटे छोटे मामूली सिपाही
 पीछे
 बड़े घरों की तरफ मुह कर दौड़ पड़ें
 हाथी घोड़ों से अलग
 सिर्फ उन बड़े मोहरों की तरफ
 जो योद्धा नहीं खिलाडी हैं—
 खेल की रफ्तार से अलग
 ऊँची खिडकियाँ में बैठे हुए ।
 मेरी कमर में पड़ी
 उनके कटे हुए हाथों की क्षालर
 अब मुझे युद्ध में नगा नहीं होने देती
 और उनके कटे हुए सिरों की माला
 मेरी मण्डनप्रियता का
 अम्तान रखती है ।

ये वे लोग नहीं
 जिन्होंने किसी भूमि या सुन्दर स्त्री या
 सफेद कलश के लिये
 युद्ध रचना की थी ।
 ये तो अघेरी छतों के नीचे
 बुझ रहे चेहरे हैं
 जो रोशनी में आते ही
 सिपाही की तरह दिखने लगे थे ।

ये अदना लोग
 चूल्हे की सक्षिप्त आग में
 पेट की बड़ी आग खाते हुए

अचानक इनके शरीर के वे हिस्से
 सून की तरह खोलने लगे थे
 जहाँ अरसे में पानी भर गया था ।

वह कीन सी आग थी
जितन इत गम किया था इतनी दूर तब ?

'वह कीन सी आग है'
द्रम मयात के लिये परेशान होना
एक और घुतता है
पत्थरावाली इमारत में बठे हुए सागो की
जबकि सब तरफ आग ही आग है ।
पेट की
छानी थी
और घुएँ की तरह बत ग्यारक फँस रहे
माये की
सब तरफ आग ही आग है ।

सकरी गलियाँ म गया हुआ पौराहा
अभी तक नहा लौटा
बाहर पहरा है
सिफ बाहर पहरा है ।

अन्दर के नहीं जायेंगे
लाहे के टोप और जूत पहनकर भी
अन्दर नहीं जायेंगे
तग गलियों में घतरा ही घतरा है ।

तबिन य भी वही लोग हैं
वही मामूली लोग
जिनके शरीर के बहुत बडे हिस्से में
पानी भर गया है
और जो चूल्हे की सगिप्त आग में
पट की बहुत बडी आग झाकने के लिये
पहरा द रहे हैं
अपनी ही आग का पहरा
य अनजान लोग ।

178 वही भी खत्म कविता नहीं होती

पत्थरो वाली इमारत में बठा हुआ आदमी
और राजपथ
क्या अब तरु सुरक्षित है ?

वे अब तक नहीं लौटे
वे सचमुच ही बड़े लोग
जिन्होंने अपने कटे हुए
हाथों की धार से
मुझे नगा होने से बचाया था ।
और अपने कटे हुए सिरों की माला से
मेरे वक्ष को सजाया था
वे अभी तक नहीं लौटे
जबकि मैं उनके हाथ लौटा चुकी हूँ
और कटे हुए सिर भी ।

मेरे नग्न होते ही
काल नगा हो गया
निराभरण क्रूर

और पानी वाले हर हिस्से में आग
बढ़ रही है
वृषाण की तरह तज, फुर्तीली आग ।

उनके लिए
मैं अपने सब हाथों को जोड़ूँगी—
मेरे ये दो हाथ
जो पाने पहनने का काम करते हैं—
इनके अलावा अपने सब हाथों की
और अपने उन चेहरों को भी
जो देवालय से बाहर होने ही
मेरे एक चेहरे में घस गए थे ।

इस बार लड़ाई

मंदिर से नहीं
 सडक पर होगी
 मेरे उस स्वभाव के साथ ही
 जो देवालय से बाहर होते ही
 कालचक्र की कीलों में
 चिपक गया था

इस वार
 वह भी आहत हो सकता है
 जो बहुत पहले
 मेरे केशो की छत्रे की वीक्षण करने वाले शत्रु के प्रति
 अग्निशूल बन गया था

यह इतना छोटा युद्ध
 बुझे हुए चूल्हा
 और जलते हुए पेटा का

इसके बाद और बहुत से युद्ध
 आदमी की ऊँचाई के लिए
 मुझे लड़ने है
 बहुत से बड़े युद्ध
 सडक से मंदिर तक
 आदमी से ईश्वर तक ।

उपनगर मे वापसी

बलदेव वशी

जन्म 1938, मुलतान (पश्चिमी पाकिस्तान)

कृतिया

कविता सग्रह दशक दीर्घा से (1970), उपनगर मे वापसी (1974)

अधरे के बावजूद (1978)

'विचार कविता की भूमिका' मे संपादन सहयोग

काला इतिहास (कविता-संकलन) समकालीन कविता विचार

कविता (संपादन) प्रकाश्य आत्मदान (खंड वाच्य)।

पता 2941/13 रणजीत नगर, नई दिल्ली 8

प्रस्तुत लम्बी कविता 'उपनगर मे वापसी (1974) कवि के इसी शीर्षक के कविता-सग्रह मे संकलित है।

[मैन रोड पर चलता हुआ पागल सहसा बडबडाता है
उप-स्थितियो से लेकर उप-दशाओ तक फैले तत्र मे झलते
बनेले वत्तमान
विवृत
घुलते हुए
फिर अपनी भीगी कमीज को निचाउ कर
फटकारता हुआ प्राय चीखते हुए कहता है
कहा हो, यार ?
उबकाई आ रही है
मूर्ख !
जरदी करो !
दश्य बदलो ! !]

उपनगर मे वापसी

चलते चलते

‘तुम कहाँ हो ?’

— किसी न पूछा

बिना उत्तर दिए मैं अपन पीछे छिप गया

उसके सामने एक अघेड युवक का लटका हुआ चेहरा था

जो माधी शताब्दी फिल्म की तरह जग बुझ रहा था

मैं अपने भीतर था (भी)

और नहीं (भी)

उसने गहराई से देखा

घणा से मुह सिक्वोडा और कहा—

‘आदमी अपने पीछे छिपा युद्ध हो गया है’

— लगा कि उसने लोकतंत्र मे किसी का नाम बुदबुदाया है

मैंने चेहरे का पोस्टर उखाडकर सामने रख लिया

उसने उत्सुकता दिखाई

फँती आँखा मे मैं था

पोस्टर था और सामने रखी

राख की पुडिया

वह हेसा ।

उसनी हेसी का रहस्य

वही हिराशिमा था, वही नागासाकी

184 कही भी खत्म कविता नहीं होती

कही वियतनाम और बही भारत
दरअसल वह हँसी पहले जमती हुई मोम में बदल गई
फिर धीरे धीरे पुराने पलस्तर की तरह भुरभुराने लगी
फिर मात्र भ्रमहीनता का एहसास

शोर की घनी परतो पर यह जो
गम लकीरा से लिखा है चौराहा पर—

‘अपने बाये चलो

यह जादमी के निकट पडता हैं उबलती नदी का सहवर्ती भाग
कि तु अफसोस है

धादमी सही नारा भी नहीं हुआ

अब किसी का नहीं लगती

कविता से चोट

या बददुआ

हवा में पबद हो गयी है चीख

ठंड ने सबको अकेला कर दिया है यहा कितना !

कितना !!

वह पक्की सडक है

जनपथ

जो सीधे चलकर

अब बायें मुडी है

यही एक बच्चे के हाथो

ऋतुएँ खो गयी थी

तब से भयभीत वह

घर ही नहीं लौटा

वितादो अलग फेंक

बामकाजी हो गया

यह उपनगर 1950 में बसा । बसाया गया था । है । होगा ।

यही पुराना रेलन फाटक है जागे स्टेशन

जब देखो ट्रेफिन बंद

जीर प्रतीभा में कौटा चुका है

विभी चलती फिल्म का घिसा हिस्सा

झटके से गया है
 जागे दायी ओर यह पहला ब्लाक है
 यहाँ एक कुआँ था
 अब !
 नहीं है !
 कुएँ के पास पीने के पानी की टकी थी
 लडते जगडते लोगो की बतारे थी
 अब !
 पानी के साथ
 लडाइयाँ
 घर घर म बँट गयी हैं
 इन इक्कीस वर्षों म
 बिलकुल उदल गया है यहा का इतिहास
 —कहाँ गयी भूमि को बक्सार करने वाली
 सतह पर देखती आखें ?
 धरती की पपडियाँ छीलते बुलडोजर
 मजदूरों के घूमते समूह
 धूल उडाती वीडो बेचने वाली गाडिया
 बरसात के गाने

अब मद्धिम रौशनिया म पलता
 धीरे धीरे बढता
 नवल म जीता हुआ उपनगर
 'पुरा नगर हो रहा है पटठा
 —वही 'सैलर',
 वही बेज—नये रेस्ट्रा
 गम सिसकारियों को ओढ़
 भरपूर
 रगो—गधो—उत्तेजनाओ म एकाकार होते
 धडकते पिडो की सिम्फनी—
 सिर से नीचे
 आधुनिक
 बाधा म
 सुर मिला चिल्लाती धौकनियाँ

इसी ब्लाक को ले लो

यहा जसबन्तू गले म फदा डाल झूल गया था भरी दोपहरी
वाप अभी दुकान पर बँठा है हर समय मोमबत्तियाँ जलाये
हर मौसम मे पचा झुलाता पापाने म प्राय चिल्लाते हुए बापता
हुलहुलाता प्योपल अब गिरा ।
अब गिरा ।

उसके द्वार पर गुलमुहर फूला है डहटहा ।
हहहा ।

कि-तु उसके पास अब कोई रग चलकर नहीं आता
—मौसम के साथ समय भी मर गया है देहरी पर
यही नगर की आधारशिला है
जिसके निक्कट अब भी
नेहय युग का पागल गठरी सा पडा है
योजनाओ के घमाके से उसी का
सतुलन उडा है
उसके निक्कट पडे हैं
विजली के तार
पिछले अघड म उडी
मकानो की सीमेटी चद्दरा की छतें

पूरे उपनगर मे वही एक् स्वतन्त्र है

हवा की तरह

दे मतलब घूमता पागल

जब देखो यहा

वहा

कुछ बो रहा है

नुमायशी रगो की तरह सूखता है

धीरे

धीरे

सिक्कुडती हैं नस

और फिर देखत-देपते

कुछ ठोस सग / मर / मर हो रहा है

आस-यास

घना होकर
गिर
रहा
है
नीचे

कभी वह भूख की तरह
हँसकर
सफेदी की तरह
गभीर हो जाता है
अब, जबकि सभी पर्याय विखर गये हैं
पागल नागरिक की कोटि म आता है
उसके जिस्म पर
लाल और सफेद चीटिया
रेंग रही हैं एक साथ
क्या नागरिक होना
यो निरीह होना है ?
बाजू, टांग या शरीर का कोई हिस्सा खोकर हँसना
हकलाना
या सोना है ?

कोई भी नगर ऐसा नहीं होता
और जब भीतर आग लगी हो
चुपचाप तही सोना !

आज ऐसा सम्भव है कही ?

— बाह ! इसका मतलब गलत ही ठीक है !

तुम, कम-अज कम मर सकते हो !

— मैं बहस म नहीं पढता'

मुझे जान दो

तुम्हारा जो मन कहे करो

यहाँ बोन पूछता है

जब बायदों और दायरा म बात करना निहायत मूलता है

और हा ! तुमने गजला के साथ

कठपुतली का नाच कभी देखा है ?
 मरना उतना ही झूठ हो गया है
 अब हँसी न आए तो
 बगला में मटक दवाकर हँसो
 और गाना हो तो
 कुहनी के नीचे गाव तबिया

यहाँ एक बिना बाहा का लडका था । अब
 जवान है—भगत कुबडा
 पसलियो में समा गए हैं कधे
 और पीठ पर उभर जायी है हड्डिया की गाँठ
 पैरो से रोटी पकडने की बजह से
 अधिक मुडा है बरसाता में
 टीन की छत्ता सा बजा है
 और गमियो में
 भूसे सा दूर दूर तक उडा है
 इस समय वह घुआधार भाषणों में
 कामा सा व्यथ है
 किसी बम काड में बलसे गिलगिले चेहरे सा वह उभरता है
 थरथराहट के बाद
 थोडी देर काप कर
 किसी जोहड में डूबता है
 इस नगर के एक जोर रेल पटरिया है
 दूसरी ओर बरसाती नाला
 मध्य में छितराये
 अपनी ही विप्टा में घँसी भसो के बाडे ।

श्मशान तक फैल गया है उपनगर
 जिसमें खप गये हैं खेत खलिहान
 अबध आवादी और पानीदार कुएँ
 कँटीले टडे मेडे घाड, किसानी गीत
 अब तारकोल—इट्टे—रोडी—सीमेट का
 शतरजी खेल है शेष
 चौपड पर प्राय शूने हुए बूडे

फिसलती गोटियाँ

इसके नीचे कुओ मे दफन है युवा मन
 स्थान और समय के एक बिंदु पर
 खडे हो इहोने भरी है और कुओ की गहराई
 —आवारा पशुओ के शव
 सक्रामक रोगियो के वस्त्र
 कूडा धीनती लडकियाँ
 बलात्कारा हत्याओ के चिह्न
 पिछवाडे स फेंके लोथडे
 इन के चारा आर भौभरी लेते
 बचपन की धूला और भूलो म
 समान थे । साबुत । छोटे
 बडे
 होते होते
 एक की आँखें नही रही
 दूसरे की जीभ
 तीसरे का घोखे की तरह बठ गया कधा
 चौथे गहरे विधे पक्षी पा चक्रवात मे फँसा
 गाते हुए रोता है
 धुन-खायी पसलिया निबल जाने पर
 झुकता है कधा । खुके कधे वाला आदमी
 कसा हाता है ?

कभी कभी उपनगर के किनारो को गिराती है बरसाती [नाले की धार
 वैसे कुछ भी अनपक्षित घटने पर यहा
 अब नही होती हैरानी
 बस व्यक्ति अपने ही ऊपर
 गिरता है औघा । पूरा का पूरा
 और सँभलते देखते
 पानी की एक और शक्ल
 मिट जाती है
 आस पास अब भी गडडे है
 जहा बरसाता म पानी भरता है

190 • कहीं भी खत्म बचिता नहीं होती

घास उगती है पशु चरते ह

—जहाँ अब भी कोई शमदार डूब मरता है

उप-चुनाव । सब कहीं फली उत्तेजना

धमनिया म मरोड़ लेता खन नारा म गलता

व्यक्ति खामखाह जलता है । यह ऐसी आग है

जो सफेदी पर खिलाती है लाल गुलाब—बेतरतीब छीटे

और दिन रात किसी अज्ञात यातना सी जलती है

कोई मशाल

नफरत की तरह

उठते बगूलों में उड़ते लोग

किरकिरी बन आखों में भरत है

कीच बन बहते हैं

इही उप चुनावों में भटकती हैं बतिया

गदी होती है दीवारें

युद्धरत है चिल्लाते पोस्टरो की संस्कृति

घाव पर स खुरण्ड छीलता भगतू हैरान है

‘भगतू अपग है

‘कहा है उसका बोट ?’

और भगतू एक पर्ची का खिलौना बना

आधे में सफेद

आधे में काला कर

खेलता है धूप छाँह

दिन रात

उसे कौन समझाए

पर्ची दिन में पड़ती है

गिनती रात में

और हर समय घोषणाएँ

वस्तुजा का अस्तित्व आपस में टकराकर आज

नहीं पदा करता कोई तीसरा अस्तित्व

बल्कि टूटने की भीड़ी आवाज़ें

खालीपन को जाहिली से भर रही हैं
 आपसी नगेपन की खूबसूरती पर
 बे-तरह मर रही है। दायें से
 बायें

चल गयी है हवा (कहने को)
 पर मुख्य चौराहे पर बच्चों को लिए खड़ा भिखारी
 अत्र भी

दायें हाथ से मागता है भीख
 अवधि मध्यातर के इन चुनावों में फिर
 धूल धक्कड़ में लिपटी
 गाव देहातो को रीदकर आयी कारें
 पहले ही की रफ्तार में गुजर गयी हैं
 यह जरूर हुआ है कि उपनगर का माहौल
 पहले से कुछ गम हो गया है और औसत आदमी
 उतना ही बे शम

अंधेरे में जब भी
 कुछ इधर से
 उधर सरकता है
 रोशनी में
 छत्र का नया रूप
 गिरते गिरते सभलता है

आज फिर कोई निगल गया है एव झांसा
 किसी तरह
 उतार ले गया है
 नीचे
 गले के
 जहर, जहर को काट रहा है

मक्कारी और साहूकारी में संतुलन साधे
 विश्वास और विमोह की मधि रेखाओं पर झूलाता
 पाले और गर्मों के नीचे
 बड़ा होता आदमी

शमवी चीज है
चुनाव की नहीं !

उप समय के ताप में पिघलकर बहत इस आदमी की
सपने इष्टि फाड़कर देखो
ठंडे सिक्कों की छाप व्यवस्था से गडी है
-- यहाँ लोहे की छडा में बदल रही हैं इमारतें
गारे में मजदूर
नफरत में बच्चे
झटा में वारीगर
कमीशन में जमादार
अधिकारी घूसखोरी में
मालिक कोठी में, ठाठ में
ठूस-बल में सब दफन हैं
व्यवस्था से
अटे-सटे
दिन रात
खट खट चीं चीं तोड़ फोड़
और यो ऊपर उठ रहा है उपनगर

जहाँ जहाँ उपनगर ने सिर उठाया है
औसत आदमी ने वही घबका खाया है

उपचारों की व्यथता में शक की तरह सक्रिय लोग
रात को डरावना बनाती वीरान आवाजें
आकाश बुहारती एरोड्रम की हरी लाल रोशनियाँ
देहात सोये हैं पेट में घुटने गाड़े
गडगड मडड । बे-होश
लकड़क वक्तियों की अव्यवस्थित आबादी
अध चेतन मनसूबा की तरह
जमीबा सा फलाता है नरली पाव
उपनगर
उप चेतना की बदराभा में फलता घुलता
कितना धिनौना हो गया है जीव

अवसर-अवकाश म गलकर बहते हैं अग
 सुविधा की घात मे
 लट् लकार
 दुविधा मे ग्रस्त है पूरा व्याकरण

उप-जीव्य ही सच है । अव
 बंद हवास शून्य मे
 टगी है धुएँ की छत
 न टूटेगी
 न उठेगी ऊपर
 अँगोठियो से छीजता धुआ
 नमी मे जकडा तना है
 रेंगता हुआ चलता है समानांतर
 यह हवाई छाता
 यही पर बना है
 अकाल और युद्ध म देगा काम
 जैसे बीमारी म उप राम

चलती सबक के बीच मिला है भगत्
 उखडा उखडा । धवराया । जिम्मेदार ।
 साठ के कोण पर गिरा चेहरा
 भटकी कातर आँखें । अपनी ही भूमिका मे गुल होता
 विद्रूपक, पलके झपकाता शम मे डूब भरता हुआ बहता है
 'कहो नौकरी दिला दो'
 बंदहवासी म घूमते बत्तीस वर्षों की जावारगी
 छाती म सीधे पट्टी जोरदार घूसो की मार
 उपनगर को बालिशतो मे मापने की थकान
 सूने गलियारा म घूमती हवा की हाय हाय
 एक बिन्दु पर मिलकर चटखते हैं सब
 एक साथ
 घड़घड़ाती रेल की पटरियो के नीचे से निकल कर
 मैं पूछता हूँ उसका अभिप्राय
 घबकने लगती हैं मेरी पसलियाँ
 दो लम्बे वाँसा पर थिगलियाँ लपेट कर

194 कही भी खत्म कविता नहीं होती

बनाया गया होआ
जिस पर सिर की जगह पुरानी हँडिया टिकी हो औंधी
पटरी पर ठीक मेरे सामने घडा है वह
हवा मे झूलता
आधी मे टूटा तना
वेदना की तरल रेखा
अपनी ही धुरी पर लगातार घूमता
अनुभव खण्ड

हर घटना के लिए चदो
और छोटे घघो म तरक्की पर है
उपनगर । गँवारू सुरा म रामनाम गाते मँगते
हाथा की उँगलियो म टूटे घडे की टिकुलिया बजाते
गुज़र जाते हैं पीछे
पहाडी की ओर
जिसकी सरहदा पर बिकता है ट्रक की ट्यूबा मे आया
जबैध ठर्रा । इन वर्षों इससे जुडा सारा व्यवसाय तत्र
पनपा है खूब । दरजसल गये चुनावो मे
जहा भी गिरी हैं हैलिकॉप्टर की पंघियाँ
वही लहलहाई है कुकुरमुत्ता की फसल ।
नागरिक के धन और निर्दोष के तन पर
अधिकार की तरह सजग
रात भर गश्त पर तैनात पुलिस
मस्त है चौक म एकत्र
हिज़डो के गानो मे

एक भाव है
जो ऐंठते हुए खुलता है और फलने के बाद
किलकारी मार टूट कर बिखर जाता है । उसे
सँभाले हुए जनतंत्र की तरह हर वस्तु को दोहराता
जागता है बहुरूपिया
विचकाता है आँध मौसम ।

दूसरा वा

नगा बरने के क्रम से गुज रते
 स्वयं नगा होते (हुए)
 मौसम को वक्ष पर झेलना । कई जगह पटक कर उठाना
 साथ चलाना और रास्ते की रेत में पैरा का घँसल रहना
 फिसलते इरादो दलदल से निकालकर आगे रखते ही पैर
 चारो ओर फूटत शोर को
 पीठ देकर भागना सम्भव तो होता है
 पर रोशनी
 चटख रंग में भरती है चमत्कार
 सहती नहीं गदापन
 मनहूसियत ।

यह एक जरूरी बात है
 जिसमें खा रहा है उपनगर का भूगोल
 चीखते हैं वीराने—'हमारा हिसाब करो'
 हवा जगह से जगह घूमती है आबारा । इस आबारा हवा में फँसा
 मौसमो का पीछा करता समझदार हो गया है यह बच्चा
 जो उदासी में रहता है । लम्बी सड़का पर छलांगता
 थका देने वाली दहशत को मुठिया में भींचे
 ढलानो पर उतरता
 धुआँ उड़ाता
 क्या आप पहचानते हैं इसे
 ईर्ष्या बन बरसत हुए सूघ रहा है सबकी देह में घुटती
 परिचित मिटटी की गंध
 बदरग बाता के सिलसिले की तरह वह
 टूट गया है
 जगह-जगह
 लम्बा सवाद
 शायद यह आँधी की धूल के साथ वहीं से आया है
 विस्थापित । फालतू मनमूबा में बधा
 गट्टर-सा गिरा है
 छोटी-सी परिधि में गूजता है शोर
 —'दोड़ो ! पकड़ो ! देखो !

196 कहां भी खत्म कविता नहीं होती

—'वह किसका बच्चा है ?'

तुमने भँवर म फँसे डूबते आदमी को देखा है ?
ठीक ऐसे ही जीवन को लेकर कुचक्र म फँसे हैं यहाँ के मतदाता
— बँधी टांगों से उचक उचक चलते हैं

जूयते
पैरो के नीचे की गली हवा पर खड़े
भीतर की हृदयों में बँद
घर लौटते सघप के
पदचिह्ना को दोहराते
अपने ही साया की स्मृति में चलते
नक्षत्रों से बँधे घूमते घेरो में
आगे-पीछे टूटते

दायी ओर नय रेलवे फाटक पर बन रहा है पुल
रात भर चलता है काम ! कापता रहता है उपनगर
असाध्य रोगों की तनी
चाबुक की नोक पर बुलबुलाता
अधर में उठा अमरु
गीदड़-सा रोता है सारी रात
उसकी अराँहट सीधे जावाश में उठे गडरा से टकराकर
लुडकती है नीचे
और चोट खाकर बुबुआती हुई
घर घर घूमती
द्वार खटखटाती है
फिर बीमार अमरु के पास लौट
दूररी बार के लिए पायताने रूकी घरघराती है
पास ही अमरु का परिवार सोया है
जिसमें लाभकीर है । दो जवान बेटियाँ हैं
चमाऊ ! एक पुत्र है जो सीरे पर रहता है
और इन नुफ़रत में वह स्वयं पछा है
आवाज के मरने का एहसास !

माँ की आँसू जा रही हैं

छिन रहा है दुनिया का रूप रंग
 अब उसे याद नहीं रहती सध्या की आरती
 दीया-याती । बल्कि उभर आती है
 उछलकर
 पँशाचिक हँसी के साथ एक लम्बी रात
 तेजी स भिचभिचाती आँखो म चमकती गाधूलि

जमीन तब झुब आयी है अगूर की बेल
 गभीरता म तन आया शाम का झुटपुटा
 गीलेपन म डूबती है रोज
 जाते दि॒ए की पीली कुम्हलाई रोशनी की आभा
 अपनी इही आँखो के आगे असमय ही मरते
 अजुरी मे कितने फूला को विसर्जित करते
 देखी है उसन बहती गंगा की धार
 इन लहरा पर बदरग होते रक्त कमला का लेखा
 आज किस किस को मुनाए
 अघे युग म घुल रही है माँ !

मरे ही रक्त से जुडा
 हड्डिया के शिफजे म जबडा
 'मांसपेशीय क्षरता' म त्रिधा
 तेरह वष का बच्चा है एक
 दहलीज म पडा
 चौकी पर बैठ रँगता है
 बाहर भीतर
 निरुद्देश्य
 'इसे मरते दस वष लगेंगे'— डाक्टर का कहना है
 इच इच कटना
 दलदल मे धँसते रहना । स्तब्ध ।
 क्या वास्तव म यह मरना है ?
 या अपराध उगलवाती
 जोडा पर पडी मार को सहना है निर्दोष ?

थककर आया उसका बाप

शाम को घर नहीं रहता
 तिल तिल मरते बच्चे की आँखों में भरकर भटकता है
 ताश के पत्ती में बँटता
 लम्बे वशा में खिचता
 बीड़ी के धुएँ में उड़ता हुआ लौटता है दोबारा
 जबकि घर के बतना को चाटकर
 गली के मोड़ पर मिलते हैं ऊँची आवाज में रोते बुत्ते
 — और वह साजिश की तरह घुसता है भीतर

— 'बाहर मत याको'

— 'भीतर मत याँको'

फडफडाती है बजनाएँ

— 'तुम्हारी आखें बच्ची हैं

बाहर आधी है और भीतर कुएँ की खुदाइ'

उन्होंने डरकर सिर भीतर बर लिया । यही से शुरू होता है
 सीलन, उमस और क्षरता का इतिहास

— 'क्या कहा, कुएँ में झाँकने से क्या होता है ?'

बाहर से लौटा आदमी पहले अपने पर ही टूटता है

बाज की तरह झपट्टा मार

फिर पहचानता है घर बार

खौफ को निवाल

बाएँ हाथ से

दायी जेब में भरता है

रास्ते को

नाक पर टिका कर

भागता है सीधा

उमस में घुट्ट है आकाश

पीठ पीछे उमडते चले आ रहे हैं बादल । उत्तर में

सरकारी कोप से सहायताथ पत्र लिखवाता भगत्तू

कहता है जल्नी करो

खराब होने वाला है मौसम'

उसकी पहुँच में हर बार उग आती है बरसात

या आँधी या आलस्य
 उसकी आँखा म सूखी नदी का बछार है
 बरबत बाशी गाते सूरदास की मुद्रा
 और भौहो पर टिकी मेरा रोड
 जिस पर चिलचिलाती हैं दुघटना की सम्भावनाएँ
 पत्र को मेज पर टिका
 टाँग उठा
 उँगलिया म पैर धाम
 भगतू पैरा से बरता है हस्तांगर
 और मेरी ओर दृष्ट्यर हँसता है साभिप्राय
 कितनी तेजी से बदल रहा है व्याकरण

या उपनगर है मेरा देश
 भूगोल पर स्थित
 रात म सोया पीपल
 (बूलता जागता उमाद)
 अँधेरे उजाले के मिश्रण मे
 निचुडकर बहता
 पसीजता
 अँधड और बारिश के बाद की बरण स्थितियाँ
 पुलती हुई
 भोगी
 धुली धुली

बडी
 छोटी
 फिर उससे छोटी डिब्बियो को खोलते
 वाइम बप बाद
 निकला है एक् ओराग उटाग
 उछलकर पीपल की टहनी पर बैठ
 सलाम बजा कहता है— 'सोनार बग्ला'
 गोली की घाय' के साथ छितरा जाती है चिदियाँ
 उपनगर म फैली है बदहवासी

200 बही भी पत्न वविता नही होती

अब हवाएँ एव ही ओर भाग रही हैं
नाले म आयी है बाढ
निनारे टूट रह हैं

आजकल भगतू ट्राजिस्टर को पँरो म पवड
दिन मे सुनता है गाने
और रात को समाचार
यो केवल वही दीखता है लाचार
धाकी सब व्यस्त ।

पत्यर मे गडती कील देखी है ?
और जब कोई स्वय पर ही कील सा गडने लगे ?
इस बार मुझे निणय लेते देर नही लगी
देह पर लगे सभी टाँके काट
समझौते की तरह देह को तोड
मैं युद्ध मे शामिल हो गया
लववा मारी टागा को झुलाता
पीडा को देह मे जगह जगह पासता
क्रूरता मे चलता हुआ
खून धूषता
अपन को कितना मार सकता है कोई
मैं देख रहा था

बद कमरे मे देह की बुहारनी को उलटा पढते
म अकेला नही था
मेरे साथ मेरा परिवेश और वस्तुएँ
उसी क्रम मे नि सत्व हो रही थी
बहुत देर तक पीछा करने पर
बार बार सँभलती
खूँवार लडखडाती
अँधेरे मे भटकती
थक कर गिर पडी थी एक चीख

मन रोड पर चलता हुआ पागल सहसा बढबडाता है

- 'उप स्थितिया से ले कर उप दशाजा तक फँसे तत्र म झूलते
 वनैले वतमान
 विवृत
 धुलते हुए'

फिर अपनी भीगी बमीज को टिचाड कर
 फटकारता हुआ प्राय चीखने हुए कहता है
 —कहाँ हो, यार ?
 उबकाई आ रही है
 मूख !
 जल्दी को !
 दृश्य बदलो !!

घास का घराना

मणि मधुकर

जन्म 1942, राजस्थान।

कृतिया

- कविता सग्रह छह खंड पाखंड पय, पगफेरा, घास का घराना तथा अन्ध कविताएँ
उप-घास सफेद मेमने
कहानी सग्रह हवा में अकेले, भरत मुनि के बाद
नाटक दुलारी बाई, रस गधव, सराय बुलबुल
पता 8/14, राजेन्द्रनगर, नई दिल्ली- 60
प्रस्तुत कविता 'घास का घराना मणि मधुकर के कविता सग्रह
'घास का घराना' तथा अन्ध कविताओं'(1978)में संकलित है।

[चौतरफ गद के गलीचे है घाम का घराना है
घास जिसे मवेशी खाते है
घास जो शर्म और शकाओ को ढतकी है
घास जिस के अयमनस्क कोने
जितनी खिनता से बुझते हैं उतनी ही तेजी और
तल्खी से भाग को वाजुओ मे थाम लेते हैं]

घास का घराना

आखो क बराबर उठने लगती हैं दीगली दीवारें
घुटना से ऊपर सीढिया
जब मैं आस-पास की अघजली इटो म
अपनी जुवान का धुआ
अपनी जीवनी की सुल्ल मूजन
पहचानने की कोशिश करता हूँ
ऐन दुपहरी के वक्त रास्ता की गांठे
सख्त पड जाती है तब मौत के मुहरम से बालर
छुडाने के लिए क्या करे कोई
अलावा इसने कि पाँवो को
चुपके से मजमे मे छोड दे और मर्दमणुमारी
के घेरे से बचकर
अकेला बिलकुल अकेला किसी ऐसे दफतर म छूप जाय
जहा की सफेद कँचियाँ
उसकी चमडी या चीवर न पकडती हा

लेकिन मेरे लिए यह सब इतना आसान नहीं होता

किसी जगह छुपन का मतलब है रोशनी के
शतनामे को पौद्य देना
घधा डूड लेना उन तहखाना मे जो काने बानार का
समूचा माल गाला म भर कर भी

206 वही भी खत्म बचिता नहीं होती

भापा के भाव को नहीं छोते
त नाक का नक्शा त्रिगाढत हैं

मैं मिणिया बल्द भूरजो रेत में पैदा हुआ
रेत में बड़ा हुआ
वही भी रहूँ कुछ भी वहाँ घड़ तक हमेशा रेत में गड़ा हुआ
फिर ऊपर है एक बारूद का सिर
जो किसी तलघर में नहीं
तमचे में घुसना पसंद करता है ताकि बाजीगरा की
दुनियाद को क्षकशोर सके

इनकार सिर्फ इनकार होता है और उसे जबर्न किसी के
ओठों से अलग नहीं किया जा सकता

मुझे पेट में लेकर
जिस जगल के ओर छोर सूखे फल बटोरती
रही मेरी माई
वह नौ महीने बाद काट लिया गया
और अब वहा
इतने नगे ढूँह है कि कोई उँह छू भर दे तो पहनने आढने
का शऊर भूल जाये

चोतरफ गद के गलीचे हैं घाम का घराना है
घास जिसे मक्खी खाते हैं
घास जो शम और शकाओं को ढक्ती है
घास जिसके अयमनस्क कोने
जितनी खिन्नता से बुझते हैं उतनी ही तेजी और
तल्खी से आग को बाजुओं में थाम लेते हैं
जब जब मैं पानी की जगह थूक घूँटते-सूँटते थकने
और थकने लगता हूँ
उबता जाता हूँ उपायो से
अपन गुस्से को कमीज-मायजामे के साथ तहा कर
चहर में लपेट कर
लौट पडता हूँ घुप्प घास के घराने

की पीली पगडडिया पर समयहीन
 वे मेरी हैं मुझे उन गलियो दरवाजा-दस्तूरा तक ले
 जाती हैं बेबाब
 अपने लोगा की पदचाप सुनने के लिए जो कुत्तो की
 तरह कान उठाये रखते हैं

मेरी बगल में एक धारीदार धैला होता है या मोम की भाँति
 गलता हुआ उष्ण मोह
 कि झुकू नीचे धुकू बंभावाज
 भूरी भभकती बालू को हथेलिया में उठा लू
 सूँघ कर देखू उसकी बू
 सनाटे जसी सनसनीसेज और सरासर सूफी

तभी नजर आती है रावगढी
 समरू की चपटी खोपड़ी हुक्के की गाल
 हर फूक के साथ उछलती है चिलम की लौ

अगारे की चौंध में धरधराता है उसका चेचक के दानो
 से भरा डरा मुँह
 जैसे कोई मास-लोथडा
 माची के झूले पर रख दिया गया हो

यह सच है कि समरू के पास
 अपने ज़खमो का कोई सिलसिलेवार ब्यौरा नहीं है
 सिवा इसके कि सोटिया की मार से सूजी हुई बमर
 कभी फाड़े की भाँति टीसने लगती है
 कभी मवाद में लिसफिस हो उठती है
 उसे नहीं पता
 कि उसका ससार
 बुरा है या भला है क्योंकि लू की लपटा और
 'अदात्ता'
 की रोस भरी चिनगारिया
 में दिन रात रहने के बावजूद वह पूरी
 तरह नहीं जला है

208 कही भी खत्म कविता नहीं होती

उसके टखनों पर कड़ी मशकत के खुरदुरे गट्टे हैं
मेहनत

हा हाड तोड़ मेहनत छुतही बीमारी है

यह जिसकी लगती है

रोम रोम रौंद कर ठगती है

रावले के रूखों की करखरी शाखाएँ

अभी भी इस तरह सनसनाती हैं हवा में

माना ठाकर सा गोले गोलियों पर कोड़े बरसा रहे हो

टीलों पर चमक रही है मुर्दा जानवरों की ठठरिया

और म

मिणिया वल्द भूरजी वासा छत्तर ढाणी

एक नुकते पर पहुँचकर भीत की तरह खामोश

खरगोश हो गया हूँ

मरी समझ में नहीं आता कि इस द्वंद्व इस

बियाबान

विलाप को किस ढंग से कहा जाये

कैसे उधेड़ा जाए रेत में धँसी हुई जड़ों का जम-जाल

हालाकि मुझे उसका रेशा रेशा जवानी याद है

बोलना चाहता हूँ कि गले का टेंटुवा

बाहर निकल आता है फट्ट के मींगने सा

जैसे चूल्हे में चिटखते हैं लकड़ियाँ के डठल

होठों से

किरच किरच लपज फूटते हैं

रीठ में दौड़ जाती है किटकिटी कपकपी जाँघों में झाँट

उलझन लगती है गुच्चा गुच्छ

कितने ही दुख कितने ही कचे कितनी ही कुहनियाँ

कितने ही बिकलाग कुल दबे पडे हैं धूल में

कोढ़ के घाँवों से बने हुए हाथ

दाद की धारियाँ से बटे हुए पुठे

दमे से द्यनी फेकडे

फीके आसमान में पख तैराती है
 अपसगुनी चीलें
 उनकी बहरी छायाएँ

वालू की सलबटो पर मडरा कर
 पुलीसिया मकाम के घाम फाटव में लोप हो जाती है
 सहसा —
 सुनते हैं वहाँ एव भयावह 'अचरज' एक थोथ है
 आधी रात को
 जिसमें इक्ठ्ठी होती है गाँव ढाणिया की जव्वर
 चुटलें और जिनो को गोद में बठन्नर
 चौपड खेलती हैं
 वह एक अलग दुनियाँ है
 यह एक अलग दुनियाँ है

यह भुरभुरी भडास भरी दुनियाँ यह रेगिस्तान की
 खीलती हुई स्याही
 डालो इस कडाही में पँर डालो
 गहरे उतरो भाई
 इननी तेज इतनी गरमास वाली आधियाँ
 चलती हैं चौतरफ कि एव सच्ची साँस ले सकना
 और पपोटे फँलाकर किसी रास रोगन को सही-सही
 देख पाना मुश्किल है
 लूओ में सीजती रहती है त्वचा
 हडिडपो में सुराख हो जाते हैं
 पुतलियो के बीच से गुजरता है छरेंदार पीलिया
 बारम्बार पहाडो का कद सम्हाल कर पृथ्वी का
 पोसने वाले मिनख
 पहाडो की तरह अधे हो जाते हैं

वे अधे और पगु बाचाहीन जो जनतत्र का
 बोझ उटाने वाले
 दमदार थम्बे हैं
 कतई नहीं जानत कि व क्या हैं और क्यों हैं

210 वही भी खत्म कविता नहीं होती

उहे अपनी हैसियत अपनी ताकत की कोई
परवाह नहीं न ही यह मलाल कि
साला साल वे वेगारी मे इस्तेमाल किए जा रहे है

उनकी घाल खपरैल बन चुकी है और उह किसी
मौसम की मार मखौल की फिर नही
ऐडिया तनुवा म फट चुकी है इस बदर
दरार दिवाइया कि खेता की मेड
से लगी हुइ खाइयो
पर हँसी आती है
जेठ-बैसाख के ताप म बोरी चाम पर उठते है फफोले
पानी के बुलबुलो की भाति फूट
जाते हैं पसीन की धार कभी भाप बन कर उड जाती है

जाने कहा
कभी रोय राये म खुशक होकर खुजलाने लगती है

वे जुझारू जन
जिंदा है पर उनके भीतर मौत पसरी हुई है
वे जीवन म जुताई म शामिल ह इसलिए मौत को
नही जानते

उह किसी और ठौर म कतई दिनचस्पी नहीं है
इस तरह अलग अनसुन अनदेखे रहने के लिए वे
लाचार भी नहीं बल्कि अपन भिन्न तरीके से तयार है

यह तयारी नफरत के बगुला को
रोकवर रखने
और अपनी असली नस्ल को ठोक-ठोक कर पहचान लेने की
आकठ तैयारी है

वे अटूट अविभाज्य हैं किसी भारी भरकम हथौडे
की चोट से भी उह नहीं तोडा जा सकता
चिन्तु आदमग्योर अजाला के मूर शिक्जे

मे वे मुचते चले जाते हैं दिन-ब दिन
 एक घड़ी ऐसी आती है कि गोठ के गोठ मिल कर
 रुजगार की तलाश मे वे शहरा की तरफ
 निकल पडते हैं ब र-आ-द
 देह का फौलाद पिघलकर बन जाता है पसीने का
 नमक
 गोदामा म कंद कर दस दिसावर के अलकृत नागरिको
 निर्बिराघ निर्वाचित नाबदाना
 को सौंप दिया जाता है
 ताकि जग्ने-आजादी के मौके पर वह भाजन का
 येहतररीन बना सके पुराने जायमे को वाकायदा
 बदल सके

बरसा बाद S S S S द
 वारिश के बादल दख कर
 जय के दो कौड़ी के मजूर
 किसाना की तरह बाँध बजाते अपनी अधकचरी
 अनाथ ढाणिया म लौटते हैं ता
 उनकी औरतें
 साहूकार- बनिया के री री बच्चे जनती हुई मिलती हैं

अलवत्ता

उन अधोरी औरता का सत्त कभी भग नहीं होता
 वे जिस द्वार-द्वीप से पराया की गदगी अपने अदर
 लेती है उसी से
 सडाघ की लाथ बाहर फक कर चुस्त चगी हो जाती हैं

होता यह भी है कि घणिया की वापसी पर
 वे उन गलीच री री बच्चो को
 घतूरे के बीज या पिसा हुआ काँच खिलाकर
 पल्ले झाड लेती हैं और फिर नए सिरे से
 अगा का उजास समेट कर
 अपने खून को अपन खून की औलाद

212 वही भी खत्म कविता नहीं होती

के हक में उवाचना शुरू कर देती हैं
कोई ग्लानि नहीं
कोई हिचक नहीं न पछतावा न क्षमा याचना

हालत पर गहराई या वह ढिंढाई
से सोचना गुद कटघरे के बीच खड़ा करना है

क्या डाले स्वयं को दया की दारुण देगची में
कि हर क्षण
किसी जुम का अहसास आता को कुतरे
किस लिए तरजीह द उस बदशक्ल भावुकता को
कि वह आग बढ़ कर जिरह करे

वे भरे कबीले की कृपाण
जोर विफायता मिनया है और उन्होन
जिन्दगी के
जिस्मानी फरेव को अच्छी तरह समझ लिया है

कसी हुई तात की भाति ताना रही है
कमायच की धुन
उसके सहारे सहारे में अपने
उखड़े पुखड़े भूगोल
को खोज रहा हूँ खोद रहा हूँ खींच कर ला रहा हूँ
हिंदी हिन्दुस्तान में

पेड़ पर पालथी मार कर बैठी है कानी कोचरी
परात में पत्ते बटोर कर
माई मसाला पीस रही है नथ की सीक धूप में
टिमकी सी लगती है

भवा की लकीरे आगे-पीछे खो जाती हैं
ज्या ही थमती है सिलबट्ट की तुनकमिजाज तान
आयें चेहर से बड़ी हो जाती हैं

इतमीनान घनिष्ठ इतमीनान को मसूडो से चिपका कर
 दात कुरेद रही है मँथली ठकुराणी
 सोने की सलाई से फूटती हुई चिलक
 तितली की तरह पाँखे पलकें झपटाती है टटीनती
 है नाभि की नष्ट नदीदी लहरा का

क्या शेष रह गया इस उचाट तन मे
 हल्की लोबान हल्की दलदली दूब
 की गंध
 जो गिस्तर की वासी शिकनो मे उलझ कर उत्तर
 देती हैं अधीर अपनापा दनिक दाम्पत्य

ढहते हुए कोट-कगूरो के साथ यह सब ढह जाएगा
 यह टोपीदार वक्ष यह टागा की टकार
 यह देह का दडवा

आक फूस की ओपडियाँ और पीप के किवाड

मैं रुही कुदा बजा रहा हूँ कही उचक कर चाँकता हूँ
 ऊदबिलाव

नाई का उस्तरा नाई की कनपटिया मे
 चीरा लगा रहा है
 बढई की आरी बढई के बेडोल ढाचे की काट छाट कर
 तफ्ते-ताऊस बना रही है
 जुलाहे की जोरू
 अपने रुसे वाला को रुसे नगे वदन पर ओढकर
 सो गयी है
 किसी की नजर म नहीं आता यह मसाला
 कि 'पचात' भवन के
 दिवालियाँ दालान मे झाडू देते देते
 नूरेखाँ की नेक दुल्हन अब च्याडू हो गयी है

'टाँके रमजू दरखी के नसीब मे है कुरते म नहीं'

एक ऊँघती उपेक्षा के साथ
वह इस साँच का स्वीकारता है और सटती
से मुई में अगुस्ताना रोप देता है

सदियों के स्यापे को गाढा करता रहता है लम्बरदार
झट कलम उठाकर
टीप देता है ऐसा ब्रह्म बयान
कि काश्तकारी के हूफ
पट्टेदारी की दवात में डूब जाते हैं
फिर किसी की कुडकी किसी का चालान
किसी की जमानत—
मूरान और खलिहान पटवारी के पाताल में गुम
हो जाते हैं

एक अनन्त रुचि और रुझान से
रजिस्टर के पने
पलट रहा है गश्ती गिरदावर
किस बिल में कौन सा साप है किम खाते में
कौन सा झूठ
फत्ते दीदे फाड फाड कर फालतू हो गया है

भूल गया है सचमुच वह भूल गया है कि हाकिम के
अगाडी और घोडे की पछाडी
खडा रहने वाला मार खाता है

लेकिन आदमी
अक्सर अपनी नामालूम हरकतों के सामने
हार जाता है

नमाज पूरी कर मुस्करा रहे हैं
लगातार मुस्करा रहे हैं रन्ने मियाँ और
धीरे धीरे आस्तोना
की अटार में
यूद-यूद आँसू चिपका रहे हैं

उपलो और घेपडियो की
 कोप मे
 उगती है गोरी चिटठी माटी मिली नासपीटी छोरिया
 हँसती-खेलती
 दाखा भुवा की खाड झपाड लटा मे फँसकर
 जूएँ चुगने लगती हैं
 एक मुट्ठी दो मुट्ठी तीन मुट्ठी चार मुट्ठी

दसवीं मुट्ठी के बाद
 उनकी नन्ही निवासू छातियो म
 चुनचुनी मचने लगती है बरौनिया म
 झगझना उठन है विस्मय के बाद्य

मद मद सुर साधे छलकता है
 ढोला भरवण' का बि छो ह
 उसाँसँ भरती हुई सूके सरोवर की पपडिया
 तलफला कर
 तिडक जाती हैं

किंतु जब चौदहवीं मुट्ठी
 खुलती है
 बद होती है
 एक झाय झकार माँ-बाप की पुरिया म बख मारती
 हुई
 झपताल बजान लगती है

कच्ची कोपला की कुनमुन से
 सहम उठता है कुनवा
 रेतीले रक राग रतौंधी का बहाना दूढत है
 सहमुन के छिलके उतारती हुई मार
 अचानक
 एक जपरिचित शार सुनकर हडबडा उठती है
 और उठक होकर पाँवन लगती है
 बाहर

216 कही भी यत्न कविता नहीं होती

लडाई खत्म कर लौट रहे हैं फौज के सिपाही होलदार
कतारो-कतार

वह डरकर बखारी म छुप जाती है
खाकी बर्दिया पुरजोर पेटियाँ सबकी डराती हैं
वे कभी किसी फँसले पर
नहीं पहुँचती
न दूसरो को पहुँचने देती है

लडाई आती है जिन रास्तो
से होकर
लडाई चली जाती है उन रास्तो को खोकर

लडाई हमेशा मदानो से
शुरू होती है पर मैदानो म खत्म नहीं होती

लडाई जिन सुखिया की सियासत मे
सुखिया गढती है
वे सुखिया काली पड जाती है
आखिरकार
कोई चिमना बल्द रिसालू या भादर बल्द गमीलाल
या चुनी खा बल्द सिराज
चोगान मे उकडू या औघा गिरकर
चुपचाप
इतकाल के खाना को भरने लगता है,
बाइया कलईदार कागजो पर लेकर सुन अगूठो
की छाप
रकम का हिसाब ठीक करता है
और निपट नयी बेबाओ को उनके हिस्से का इनाम
बाट देता है

फिर एक गहरी सास
फिर एक गहरी फास और यह बडबाहट
कि बचे हुए पसो की गाठ सरकारी खजाने म

न लौटा कर 'अम्मल' खरीद ली जाय
 उसकी पीनक मे सो लिया जाए मचान पर
 हपता महीनो बिलकुल मुडदो की तरह

और क्या तरीका हो सकता है अपनी आत्मवचना म
 उमडते हुए मातम से
 मुक्त होने का
 देखो प्रजापति । एक पल इधर मुडकर देखो
 तुम्हारी दिग्विजय और दिलासा
 से दूर
 'भारत दुरदसा' का यह सपाट सिफर अक
 जिसम कही कथोपकथन तक नहीं

लेकिन तुम देखोगे कसे
 तुम्हारे आंखें तो है ही नहीं
 बोरे कान है और उन पर न जू रेंगती है न चू

मुसी हुई मधुमक्खियो
 और रोगी रेलपेल के बीच
 टांग दी गई है एक इश्वरीय हाडी उसकी तली
 से बदस्तूर टपाटप
 टपक कर गिर रहा है शहद जुमलो के जिहादी
 अघकार मे

अघकार ही असलियत है अघकार ही अथशास्त्र
 और उसे जैपुर से
 दिल्ली तक के
 मियादी मतबानो म
 विशेषाधिकारो के साथ रख दिया गया है
 ताकि बरुशीश और बकाया के फक को सावित
 बिया जा सके

एक ही सरबू फूहारा की फुरहरी
 को तरसते जोहते जिसे लकवा डँस गया है ।

एक है नरसी जिसन छापी म
दखा लहराता हुआ सम दर झागल निमल नीर
और पागल हो गया

—जहाँपनाह ! फिर भी तुमने उसे पनाह नही दी
घिसटता रहा बेचारा घालमेल म
चीखता रहा चारजामे से दवा-ढँका
उस सुग्गे की भाति
जो वाड के काटील पजो म उलय गया हो
वचन की उम्मीद गँवा बैठा हा—
एक है लँगडा
फौजी फकीरचम परेड म माच वरते करते जो
मतिमूढ मेढक बनकर रह गया है
अकडकर अडियल हो चुका है ढाचा
सल्यूट ठोकते झाकते हाथ हारमोनियम बन गए है
दिल म अब घडकने नही
कदम ताल की कूटिल छवनियाँ हैं जो
अकबका कर
घँस जाती है श्वास की घौकनी म
और राष्ट्रीय धुन के घनाटे पैदा करन लगती हैं ।

एक है धापली जिसके मगज मे
है रीती वावडी की भाय भाय
इकतारे पर भैरुजी भगती
जिसने जहोस पडोस मे वेदाना खिचडी पका रखी है ।

एक हैं धुकरसिंग जो 'घणी खम्मा क जमाने
म घाटी 'सिरदार थे अब चुनाव की चादमारी म
'परधान जी' साहेब
उसके नैण सदा नम रहते हैं नाराजगी म
हाठ केसर-कस्तूरी से
इतन तर
कि निचाडकर पी जान की इच्छा होती है ।

रस्सिया की तरह अपनी शिराआ
 चँटत हुए
 रता के गरुड पुराण को गले म
 ना कर भटकते भागते हुए हताहत य लोग
 म अटका कर एक कोना
 ली घूनी
 रही है गीली ओढनी
 इस ओर कभी उस आर चपाके देती है —

लगता है पृथ्वी उसकी पकड से परे-परे
 रही है
 बुदकियो से झर रह हैं झवाझव
 सुड विच्छू
 सरकडो के पार
 दोदरो के सकस मे सटटा खेस रहा है

सचित्र साँझ !

पावूजी की पीतल मढी 'पड'
 गुजन के पोर पोर पसररी हुई !

यही बवत होता है अक्सर
 कुकारता हुआ आता है वह अलादीन अजगर

पीछे पीछे
 र ढट्टा बाँधे कई और कई कई लुटेरे
 दडबड हगामा मचाते हुए खूबार

गान म कुलबुलाते कीडे

की नोक पर उठा लेत है औरतों की
 तफरी स्तनो की गेंदें
 म जावें छोड दते हैं !

220 कही भी खत्म कविता नहीं होती

अगूठियो के लिए कतर दते हैं अगुलिया
हँसुलियो की खातिर गदनें

वे घूरे से होकर गुजरते हैं और हँगत हुए बच्चो
पर ठोकरें बरसाते है
फिर उनके नाक वान काट कर भर लेते है
जेबो मे

वे जगी डकरेल जब तक डाका डालते हैं
घबूतरे के नगाडे पर डका बजता रहता है
हाया पाई करने
बालो को 'काठ' मे कस दिया जाता है
उनके हुकम से बुढे बडेरे दाढी को
हिला डुला कर चौक का कचरा बुहारते हैं
खीसैं रिपोरते हैं हर दिन

लौटने मे पहले
वे हरामी आटे के पीपा पर खडे होकर
मूतते है
लडकियो के लँहगो मे उँडेल देत हैं अगीठिया
पुआलो और गटठरो और घास के खयालो म फेंक
जाते हैं
मुहफट मशालें
धू धू जलता है घास का घराना
ज्यू-त्यू वापस मुडता है सगीनो का लफकर

अनाज के कोठे खाली हो जाते हैं साँय साय

किन्तु धीर धीरे उनम भर जाती हैं
रोने और रेकने की मिलीजुली आवाजें तनहाइयां
वाऊ के जरूमो से रिसता हुआ लहू
एक ढरें मे गक हो जाता है उस समय भी जब
टिड्डा वे दल सेतो की ओबरू चर जाते हैं
हताशा की हिनहिन खरम नहीं हाती

फफकियाँ फाँकती हुईं कराहती मूगी जाटणी
— जब तक जीना है यही 'इमरत' पीना है

मेरा अन्दरूनी उबाल उबकाइयो म
अनगल हो उठता है

कुछ नहीं अगल बगल कृच्छ्र नहीं
बस
बलि के बकरे की एक बुदबुदाहट भरी 'बस'
काई बसूली कोई कुरहाडी नहीं
जिसकी धार से चीर कर घटना की फफूद
अग्नि और आहुति
को अलहदा किया जा सके एक बार

सुगनी स्याणी टोकती है भूल जा मिणिया
यह अदावत यह अपमान भूल जा
याद रख, कुए की मिटटी कुए में गिरती है
तबाही और तसल्ली
हमें कहीं न कहीं मजबूत करती है

आ मैं भूल नहीं पाता यह सब
रपत रपत ही सही मुझे इस बदसलूकी का
बदला लेना है
एतराज के उच्चारण में
एवाग्र होना है
याददाशत मेरी कमजोरी है और अनगिनत
कमजोरियों
की गुजलक मैं ही मैंने अपने आपको सुरक्षित
महसूस किया है
लोग मेरे लोग लुगदी के लिबास में धिरे हुए
अगरमे के बसना को जोडकर
मौन तोडते हैं ब्राऊ—
जुगनुआ के डेर से आब नहीं उपजनी चाहे उह

222 कही भी खत्म कविता नहीं होती

सिगडो में डालकर रखो
या बाल्टी में—

यह उस जजर बूढ़े
मुहताज 'मुखिया का तजुरवा है जिसने तम्बाकू के
वहाने जगारा की घघक को पी पीकर
उगला है
बगावत से बलगम तक का कठिन सफर
समचौते और सलामी से दूर रहकर लाषा है
आज भी
तीन तीसी उम्र को अलग उतार कर जब वह जोर
से हाक लगाता है
तो उसकी आवाज सात कास से आगे
सुनायी देती है
जैसे तोपगोले के धमाके की गूज

या मैं किसी गलतफहमी में नहीं हूँ मुझे मालूम है
कि बल का घाव कौवे को अच्छा लगता है
और सिरपेच
गादी पर उल्टा बैठे या सीधा
सिरपेच ही रहता है
उन सबकी पहचान भी मेरी बुगची में है साफ-साफ
जो कुछ हृदा में बँध कर
आज निरुत्तर और निश्चल और निहृत्ये है
उह लेकर मैं न परेशान हूँ न डावाडोल
क्योंकि मुझे उनसे बेहद प्यार है और वमाप चिढ़

वे ऐसे लोग हैं जिनके पास खोने के लिए कुछ नहीं है
अपनी विवशता और उदासी के सिवा

न उनके डील पर जिरहबखतर की तामशाम
है न बर्छी भाले की

न बनटाप का बज्रन है न अभिमान का

धुनियाली तोर पर वे सिफ मटियाली मूछा और
जिल्द की अनमनी फडवना म विश्वास रखते हैं

जब जब मैं उनके पैरों तार-तार पीथरा को
दखता हूँ
वेचनी से भर उठता हूँ
फिर ग्रीचतान कर सोचता हूँ कि वे उनके कपड़े
तही हैं औजार हैं
और औजारा को साथ रखना जरूरी है

सोचता हूँ यह भी मैं कई दफा
कि वे जब चाहेंगे इतिहास के पंजे का छत्र टालग
नेतृत्व की नींद का घराब देंगे
अनुमान स ऊपर निबल जायेंगे

वे चरित कर देंगे चाशनी वाला का और भटिट्यो
तोकर विपर पड़ेंगे

मुझे उनके समय और दुस्माहस पर भरामा है

जिस दिन व तय कर लेंगे कि 'अब आर मलाजत तही'
बन्धू के बतारा का
ताडगी म तन्नील करने के लिए फिन जायेंगे

अपनी वाकफिया व महारे में इतना ही कह मरना हूँ
कि वे बिनी रीठ की ध्याख्या
तहीं करेंगे
न मिगास देंगे न तरं
कवा की रागनी मे उमी तरह निगट जायेंगे जैम
बाई पाकू
मूठ स जुड़ आता है

अभी व बेवम नरमगाज नट है
पगवित्त म, बांग मडा कर गो, न-गाव टाल ग्दे है

224 कहीं भी खत्म कविता नहीं होती

अभी वे केवल मामूली भोपे और नाकुछ साजिन्दे हैं
लय की लपलपाती जीभ को
सडासी की गिरपत में लेने से पहले
रावणहत्थे की
खुराट खूंटियों को खोल रहे हैं

अभी वे बालू में बिखरे हुए बीज हैं
उगेगे तो एकजुट फसल के
सरफरोश पान फूलों की तरह उफनेंगे

अभी मुझे प्रतीक्षा है समर सौरठों की
नखों के नश्वर बनने की
और यह प्रतीक्षा एक निगरानी एक नाकाब-दी
एक लम्बी कविता है
जिसे मैं कौम की कलफ लगी किस्तों में लिखना
चाहता हूँ
बारहमासा की करारी कतरनों में बुनना
जैसे ऊन और आकाशा के अनन्य धागों से किसी
छापामार की जर्सी बुनी जाती है ।

बलदेव खटिक

लीलाधर जगूडी

जन्म सन् 1944, घगण गांव (जिला टिहरी)।

कृतियाँ

गधमुष्ठी जियरो पर (1964)

नाटक जारी है (1972), इस यात्रा में (1974)

रान अभी मौजूद है (1976) बची हुई पृथ्वी (1977)

मुन्टिक मोट (उत्तरकाशी) में अस्थापन

बगूडी सन्त्र प्रोग्रामर उन्तरकाशी (उ० प्र०)

प्रस्तुत कविता 'बलदेव खटिक' 'बची हुई पृथ्वी' में मरचित है।

[आप लोग अपनी परवाह करें
अपने बच्चों की जाच करवाये
यह केवल अफवाह नहीं
(वर्ल्ड जिन्दा होने की नयी शत है)
कि देश में कुछ लोग
पेट से ही पागल हो कर आ रहे हैं ।

लेकिन वे जब फायर करेंगे
तो यह तय है कि
उस रात कीरे हीं मरेंगे ।]

वलदेव खटिक

रात, त्रिपटा घाती गाय के जबड़े में
धीरे धीरे गायब हो रही थी
यह उसका अंतिम छोर था
जिस पर एक बटन चमक रहा था

तभी हमारे गाँव के आकाश में
अज्ञानय सोंगों ने एक दरार दपी
सह्य से गाँव पर रोशनी पँवती
यह पुलिस की गाड़ी थी

लेकिन यह इतना पना उजाला नहीं था
कि अंधेरे के भीतर दुबक अंधेरे में
कुछ आँसों, कुछ हाथ कुछ पाँव चमक उठें

य भड़भड़ाकर उतरे
और रेंगू के घर की ओर दौड़े
उनकी हुरस्त और निविध्न दौड़ बताती थी
कि हमारे गाँव की खाल खराब हो गयी है
उनकी पासाव
हमारे गाँव के कुत्ते तब के लिए
अपरिचित थी

जिसके चिथड़े न पहने हुए हा
 हमारे गाँव के कुत्ते उसे फाड़ डालेंगे
 व गाव की गरीब जनता के कुत्ते हैं
 सम्य और जजनवी पोशाका के दुश्मन
 लेकिन चार जोड़ी
 पुलिस के बूटा म
 उह वैल के चमड़े की ग घ नहीं आ रही थी
 उनक पुलिस पर
 एक लाइन म
 जैम जलथोन् उछल रहे थे

क्याकि ऐसे मौके पर
 जो जिसके पास है
 उसका उपयोग जरूरी हो जाता है
 इसलिए कुत्ते भीक रहे थ

जा रगतू
 बल राशन लूटने म शरीक था
 उनके पास उसके नाम का वारण्ट
 उसक परिवार न रात भरपेट खाया है
 भूख भर अन क नशे म
 अपन दश का एक मामूली घर भी
 आरामगाह बना हुआ है
 (बैस उस घर कहना भी
 खामोखा जिह घर कहत है
 उनकी बढ़िया छता पर घास उगा देना है)

करीब करीब अपनी इच्छाओ की मुट्टी घोलकर
 इस समय तक वे साये हुए हैं

अपनी लात में ताकत पैदा करके
 उन्होंने उसे बूट से उठाया
 और तुरत उसके हाथ बाँध दिय
 (वे हाथ जा बड़ी-बड़ी श्मागता पर

पलस्तर की तरह चिपके हुए है)
फिर थाड़ा बच्चे हुए अनाज के साथ
उसे शहर ले गये
जहाँ आदमी के लिए
जेल और पोस्टमाटम की पूरी व्यवस्था है

पुलिसवाला पर आदमिया की आंख थी
इसलिए रंगतू की नगी औरत
बाहर नहीं आ सकी
लेकिन भीतर
बच्चे उसके शरीर से पहनावे की तरह चिपके हुए थे

यह सुनहरी थी
गाड़ी के इंजन पर थरथराती हुई
अँधेरे के भीतर दुबके हुए अँधेरे में
बीबी बच्चा के लिए लड़ता हुआ रंगतू
पहली बार गाड़ी पर 'फ्री' चढ़ रहा था

यह एक ऐसा वक़्त था
जब बनस्पति
केवल धी के डिब्बे का मतलब था
और वही भी कोई शब्द अपनी क्रीज में नहीं था

शब्द जो कि दाल और भात है
शब्द जो कि रोटी और साग हैं
नहीं-नहीं, शब्द इतनी बड़ी चीज नहीं हैं
शब्द केवल राटी पर रखे हुए नमक के कण हैं
शब्द जो लार बनाते हैं
इस वक़्त वहाँ से लाय जाये ऐसे शब्द
जो हलफनामा बन सके
जो तरफदारी कर सकें

पुलिस की गाड़ी में उसकी शब्दहीन आत्मा
एक नये पेड़ की तरह है

जिस पर घाउ पहुँचने से पहले
चई हजार घमौरियाँ फूट पड़ेंगी
चई हजार घमौरियो म वद पत्ते
निशान का तरह बाहर उभर आयेंगे
भाषा अचानक सारे शरीर में फल पड़ेगी
और चई हजार जीभों से बोलता हुआ
वह बरी हो जायेगा

अपनी जडा के सहारे
अपनी मिट्टी में उतरा हुआ रँगतू
न पेड़ है । न पत्ता है । न हवा है
अँधेरे के भीतर दुबका हुआ अँधेरे का कीड़ा भी नहीं
शब्द भी नहीं
रँगतू एक अकेले आदमी का दद है
और अकेला आदमी अपराधी होता है
सवालियों के जत्थों से भरा हुआ अकेला आदमी
एक दुघटना होता है

थाने पहुँचते ही
गाड़ी से उतरते हुए रँगतू ने
थोड़ी देर के लिए खुद को बड़ा आदमी गटसूस किया
ड्राइवर ने गाड़ी का डाला खोला
और वह सिपाहिदा की ही तरह कूदता हुआ
जमीन पर खड़ा हो गया

तभी एक सिपाही को (जो रास्ते भर बीड़ी पीता रहा)
घर से आया हुआ तार दिया गया
तार पर उसकी मा बीमार थी
लेकिन उसे शाम तक छुट्टी नहीं मिली

पक्का जेल आडर' बनवाने तक
वह रँगतू को, रस्ता पक्के हुए
एक कमरे से दूसरे कमरे में ले जाता रहा
तीन गिलास चाय

और बावन पैसे की बीड़ी के धोरे पहुँचने के बाद
जिस समय झण्डा उतरने का गजर बज रहा था
उस समय रँगतू को कम्बल, कोठरी और नम्बर मिल रहा था
(लेकिन सिपाही की मा
जब मे मुड़े हुए तार पर छटपटा रही थी)

जब तीसरे दिन छट्टी पर
वह अपने गाव पहुँचा तो उसकी मा
सुई की नोक पर
अभी झड़ पड़न वाली
पानी की बूद की तरह इन्तज़ार कर रही थी

वह भागा भागा जिला अस्पताल गया
एम्बुलेंस मागी
भाग के पौधों के बीच जो खराब खड़ी थी
धतूरा जिसके इजन से बड़ा हो गया था

कई पुरानी लाशों को लापते हुए
उसने चारों ओर अपना दिमाग दौड़ाया
और जब बड़ी मुश्किल से एक विचार
उसकी पकड़ में आया
तो वह लपककर पास ही धाने में गया

क्याकि आजकल केवल आदमी होना
न्यायसंगत नहीं है
इसलिए उसने बताया कि मैं भी पुलिस विभाग का
आदमी हूँ
माँ को अस्पताल लाने के लिए
थोड़ा पुलिसगाड़ी दे दीजिए

उन्होंने कहा
पुलिस की गाड़ी अपरात्रियों को पकड़ने के लिए है
घर पर मरो या अस्पताल में मरो
सड़क पर मरो या श्मशानघाट पर पहुँचकर मरो

232 वही भी घटम बबिता नही होती

मरना वही भी अपराध नही है
और फिर तुम्हारी माँ का
हमारे पास कोई वारंट नही जो हम गाडी भेज दें
आधिर मरने वाले को मौन पबड सक्ता है
अक्सर हमारे पबडे हुए भी मर जाते हैं

जब शाम को एक दवा की शीशी और कुछ गोतिरियाँ लेकर
वह घर आया
तो उसने अपनी माँ को मरा हुआ पाया
ससार से यह फरारी किस अपराध से बचाती है ?

अभावा की इस आजाद कहानी मे
क्या इसी तरह होती है मुक्ति ?

आखिर बढाई हुई छुट्टिया मे
जब उसने अपनी माँ को स्वयं पहुँचा दिया
तब वह फिर थाना विजनीर मे लौट आया

वह विरक्त होना चाहता था
लेकिन अपना भविष्य उसे
भीतर-ही भीतर ठग रहा था
कमकाण्ड की सारी कमजोरी को ढकता हुआ
उसका उस्तरा फिर सिर
किसी फिल्मी गुण्डे का सिर लग रहा था

फिल्म वाला को जब गुण्डे और हत्यारं
दिखान होत है
तो वे अभिनेता पर आम आदमी का मेकप कर देते हैं
बात दूसरी आर चली जायेगी
क्योंकि इस बात को कान और जुवान की तलाश है
इसलिए मैं आपको
फिर से थाना विजनीर ले चलता हूँ
जहाँ अपना घुटा हुआ सिर लेकर
वह मियाही इन समय मन्तरी ड्यूटी पर है

उसकी छाती पर गोलीबो का पट्टा है
 उसके हाथ में एक बन्दूक है
 उसे नहीं मालूम वह किसकी रक्षा कर रहा है
 (मेरी समझ से वह केवल टहल रहा है)
 क्या वह ससार की अपराध से रक्षा कर रहा है ?
 क्या वह इस देश को विगडने से बचा रहा है ?
 भीतर एक कमरे में
 अपने गंदे लेकिन वरिष्ठ दांतों को लेकर
 दीवान बठा है
 रोजनामचे पर हाथ रखे हुए
 जैसे वह शहर की पीठ हो

एक मार खाया हुआ आदमी चिंचियाता है
 मेरा बटुआ छिन गया
 उसमें मेरी लडकी का फोटो भी था
 वे उससे बलात्कार करेंगे
 वे उसे मार डालेंगे
 देखिए, मुझे कितनी चोटें आयी हैं
 मेरा दद—दज करो
 इस मटीले कागज पर मेरा दद — दज करा
 अपने होठा पर मुर्दा दिन को जिन्दा करत हुए
 दीवान कहता है
 किस कलम से कहें ?
 चाँदी की कलम से कहें ? सोने की कलम से कहें
 कि लकड़ी की कलम से कहें ?

मार खाया हुआ आदमी रिरियाता है
 कि कानून की कलम से करो

कानून की कलम लकड़ी की होती है
 दीवान कहता है—कल आना
 मगर अपना गवाह भी साथ लाना
 और किसी डाक्टर से यह भी लिखवा लाना
 कि तुमने मार पायी-ही-पायी है

234 कही भी घम बयिता नहीं होती

बाहर सतरी ड्यूटी पर पडा बलदेव छटिव
जिसका मिर मुटा हुआ है
जिसकी माँ बिना दवाई के मर गयी थी
गब मुन रहा है
(घान की बड़ी घडी मुधार पर
घडीसाज फाटव से बाहर जा रहा है)

अचानक सामने पडे नीम के पड पर
उतरते घाम के बौबो से बलदेव छटिव बहता है
— थयम'
मगर वे नहीं रुकने
बह घडाघड फायर करता है
बन्दूक क बट को घान की दीवार से मारकर
ताड देता है
बीर सीढियाँ उतरकर
सडक पर मरे हुए बौबो को लाँघकर
फरार हो जाता है

(घान की बगल म उस समय सिनेमाघर के भीतर पर्दे पर एक
ऐक्टर प्यार कर रहा था)

अब तक वह सतरी था
अब वह बलदेव छटिव है
माँ की सूत इस नीकरी की' बहकर वह
मा, माँ माँ चिन्लाता हुआ
मीधा हमारे गाँव म घुस आया

उसके सिर पर टोपी नहीं है
कमीज ट्राफपट से बाहर आ गयी है
वह हरक औरत से पूछता है तुमको क्या बीमारी है?
अस्पताल तक पैदल चलो। गाडी खराब हैं

वच्चो से कहता है लाओ मेरी लकडी का कलम
मैं फैसला लिख दू

किसी की बीमारी सुने बगर
 किसी के पास एक क्षण रके बगर
 किसी को कोई फँसला दिये बगर
 वह दौड़ता हुआ आया
 और रँगतू की शोपडी में
 बेहोश होकर गिर पडा
 (शोपडी का दरवाजा खुला हुआ था
 रँगतू राशनवाले मामले में जेल चला गया था
 और उसकी औरत भी बच्चों समेत
 बहा नहीं थी
 मगर किसी ने भी उन्हें कहीं जाते नहीं देखा था
 भीतर से नींद में पूछ झुकाय हुए
 एक कुत्ता निकला और अगली गली में मुड़ गया)

सुबह होने वाली है
 लेकिन रात अब भी मौजूद है
 रात उस वक्त भी मौजूद रहेगी
 जब लोग दोपहर को ढलते हुए देख रहे होंगे

हर घर को अपना दद में लपेटती
 दरवाजों की सघों को थोड़ा और चौड़ा करती हुई
 रात ब्यानेवाली है
 चिड़िया और कौवा और कुत्ता के सामूहिक शोर में
 पत्तियाँ थरथराने वाली है

तभी हमारे गाँव के आकाश में
 अचानक लोगों में एक दरार दखी
 सड़क से रोशनी फँकती हुई
 फिर यह पुलिस की गाड़ी थी

राख की तरह क्षरती सुबह में
 चमकती हुई कुत्ता की भौक के बीच
 बीड़ी पीते हुए वे उतरे
 सम्बन्धों की वीरानगी में

236 कही भी घटम कविता नही हाती

उनके साधारण चेहरा पर
घरेलू थपेडो की गहरी गिनायत है
टटटी फिरते हुए बच्चे हैं । फाडे हैं
चूल्हे पर चढ़ा हुआ खदयदाता पानी है
भात के भपारे हैं

वे उतरे और रेंगतू की झोपडी से
उस पागल सिपाही को बाँधकर ले गय
पहले उहाने उसके सरकारी कपडे उतारे
क्योकि सरकार पागल नही होती
सरकार अपराधी नही हाती

यह अलग बात है कि हथकडी जोर सजा
इन दोनो म से
आम आदमी क लिए सरकार क्या होती है ?

उहोन भी उसे हथकडी पहना दी
और आम आदमी म तब्दील कर दिया

वह अपन ही गाल पर चाँटे मार रहा है
उसक पास न कोई सहमति है और न कोइ इकार
घरती को पीटते हुए
वह अपने ही पर तोड रहा है

फिर भी उसके पागल सिर पर
वाल
आघा इच बडे हो गय हैं
उसके लम्बे नाखून ससार की धूल मे
गदे हो रहे है
उसके हाथो मे अब भी एक जादमी की ताकत
मौजूद है
लेकिन उसे अपन दुश्मन की सही पहचान नही है
जोर उसने गालियाँ सही जगह नही दागी है

अब वह एक बोठरी में बंद है
 और उससे ब्यालीस नम्बर जूनिपर
 बाहर एक सतरी है
 एक खम्भे से दूसरे तक टहलता हुआ
 चेहरे से ज्यादा जिसके बूट में चमक है
 अपनी मुस्तदी में
 जिसका समूचा शरीर
 अनुशामन की रंग है

उसकी छाती पर भी
 गोलिया का एक पट्टा है
 सिर पर टापी है और हाथ में बटूर है
 मगर यह पहल वाले मिपाही से कहा पर अलग हैं ?

यह भी अपने देश को
 न वही पर पाता है
 न वही पर खोता है
 उनसे कहा गया है कि हुक पर शक करो
 विश्वास केवल दीवान का करा—दरागा का करो
 (उसका निजी कोई विश्वास नहीं)
 अब देखना यह है कि
 मैं कब पागल होता है ?
 एक अच्छा यामा
 काम करता हुआ आदमी
 पागल हो जाये
 १९७४ की राजनीति में
 इसके लिए कोई शक नहीं
 मैं आपको यकीन दिलाता हूँ
 बलदेव खटिक् के खानदान में
 कोई पागल नहीं था

आप लोग अपनी परवाह करे
 अपने बच्चों की जान परवाहें
 यह बल अफवाह नहीं

238 वही भी खत्म कविता नहीं होती

(बल्कि जिंदा होने की नयी शत है)

कि देश में कुछ लोग

पेट से ही पागल होकर आ रहे हैं

लेकिन वे जब फायर करेंगे

तो यह तय है कि

इस बार कौवे नहीं मरेंगे

□□

